प्रकाशक
गुर दास कपूर एण्ड सन्ज,
ऐजूकेशनल पब्लिशर्ज,
चावडी बाजार, दिल्ली-६

द्वितीयावृत्ति
१९५६

मुद्रक—
सिविल एण्ड मिलिटरी प्रिण्टर्स,
११६३, फराशखाना, दिल्ली।

कुछ माननीय साहित्यकारों की सम्मतियाँ

"राज-प्रासाद के षड्यन्त्रो के मध्य मे इस नाटक का जन्म हुआ है और विवाद तथा सघर्ष के मध्य इसका अन्त। यदि मुञ्जदेव के प्रश्रय में किया गया षड्यन्त्र सफल हो जाता, तो भारतीय इतिहास और साहित्य को राजा भोज की स्फूर्तिदायक गाथाओ से वञ्चित रहना पडता और यदि विप्लव के मध्य मुञ्जदेव का सहार न होता तो कदाचित् इतिहास का मार्ग ही भिन्न होता। परमार वश की कीर्ति-पताका तैलगण प्रदेश तक लहराती और नारी की महत्वाकाक्षाएँ इतिहास मे मृणालवती को अमर कर देती। परमार वश का इस ऐतिहासिक पृष्ठभूमि मे लेखक ने अपना कथानक खडा किया है और मानव के उभय पक्ष का चित्रण किया है। प्रेम, घृणा, प्राय-श्चित्त, महत्वाकाक्षा और अन्तर्द्वन्द्व आदि भावो का चित्रण काफी सजीव और स्वाभाविक हुआ है। नाटक की भाषा सस्कृत गर्भित है और शैली में प्रसाद जी का अनुकरण प्रतीत होता है। नाटक में गीतो का एकदम अभाव है, जो इसकी अपनी विशेषता है।"

मुख्य मत्री, अजमेर राज्य। —पं० हरिभाऊ उपाध्याय

"अजमेर के उत्साही लेखक श्री ओकारनाथ दिनकर ने ऐसे महान् विद्या-प्रेमी नृपति पर नाटक लिख कर हिन्दी-साहित्य की प्रशसनीय सेवा की है। इस नाटक के अध्ययन से जहाँ महाराजा मुञ्जदेव के महान् व्यक्तित्व का ज्ञान होता है, वहाँ उस समय की मालव-देश की राजनैतिक, सामाजिक और अन्य परिस्थितियाँ भी आँखो के सामने आ जाती हैं। भाषा सरस और जीवनप्रद है। मालव-देश के अतीत गौरव का चित्र रेखाकित करने में आप सफल हुए हैं। आशा है, हिन्दी ससार आपके इस प्रयास का आदर करेगा।"

—सुख सम्पत्तिराय भण्डारी

"भाई दिनकरजी ने मुञ्जदेव का जो कथा-प्रसग चुना है, वह करुणा को सजग करने मे बडी सहायता करता है। एक तरफ मुञ्जदेव का आकर्षण, व्यक्तित्व, उनका विश्व-विश्रुत पराक्रम, भावुक मन, अदम्य साहस, पुनीत यश मन को उच्च भावो से भरता है, तो दूसरी तरफ उनका मन मनुष्य की सभी निर्बलताओ से पराभूत है। ऐसे मन की ऐसी निर्बलताएँ, सीमाहीन की ये सीमाएँ, यह द्वन्द्व एक साथ आकर्षक और दृश्य को करुणा-विगलित कर देता है। इसी तरह सभी पात्र अपनी-अपनी विशेषताओ को ले कर प्रिय हो गये है, उनमे सभी महत्वाकाक्षाएँ और कमजोरियाँ उपस्थित है, किन्तु है वे सब इसी मृत्तिका के बने सरल और सहज स्त्री और पुरुष।

चरित्र विश्लेपण की कुशलता के साथ ही साथ भाई दिनकर जी ने इस ऐतिहासिक प्रसग को भाव-शबलता से बचा लिया है। अन्यथा ऐसे प्रसगो पर अनावश्यक शब्दाडम्बर, गलदश्रु भावुकता, अतीत की निरर्थक प्रशसा मे बह जाने का भय रहता है। कई स्थलो पर सवाद बडे मार्मिक और सुगठित है। पुस्तक मे गीतो को न भर कर नाट्यकार ने बडी कृपा की है। भाई दिनकर जी मे जो निष्ठा और रचना-कौशल है, वह (इन) ऐतिहासिक प्रसगो को चमत्कृत कर देगा। मुञ्जदेव जैसी साहित्य-कृति के उपस्थित करने के निमित्त भाई दिनकर जी का अभिनन्दन करता हूँ।"

प्राध्यापक, हिन्दी-विभाग,
टीचर्स कालेज, उदयपुर।

—नन्द चतुर्वेदी

'इस परम्परा के नाटको को देखते ही प्रसाद के नाटको की ओर ध्यान जाना स्वाभाविक है। ऐसा लगता है कि प्रसाद की नाटकीय प्रेरणा 'मुञ्जदेव' मे जागृत हो रही है। नाटक की सफलता का आधार

कथोपकथन होते हैं। प्रस्तुत नाटक में कहीं-कहीं तो बहुत ही प्रभावोत्पादक सवाद मिलते हैं। चरित्र-चित्रण भी मनोवैज्ञानिक है। हिन्दी के नाट्य-साहित्य में 'मुञ्जदेव' शीघ्र ही अपना स्थान निर्धारित कर सकेगा, ऐसा विश्वास है। भाई दिनकर जी का यह प्रयास श्लाघनीय है।"

अध्यक्ष, हिन्दी-विभाग,
दयानन्द कालेज, अजमेर।]

—शिवस्वरूप शर्मा 'अचल'

"मध्यकालीन भारतीय इतिहास में राजा मुञ्जदेव का वृत्त विस्मृति पटल में प्राय तिमिराच्छन्न ही रहा है। श्री ओंकारनाथ जी दिनकर की प्रथम कला-कृति मुञ्जदेव, को देखने का मुझे अवसर मिला, तो मुझे हर्ष और आश्चर्य दोनो ही का सम्यक् अनुभव हुआ। अधकारावृत्त नवीन ऐतिहासिक घटनाओ को प्रकाश में लाने पर हर्ष और लेखक की नाट्य-क्षेत्र में प्रथम सफल कृति पर आश्चर्य। पात्रो का चरित्र-चित्रण, सवाद, नाट्य-वस्तु, रस-निष्पत्ति, भावमयी भाषा का अजस्र प्रवाह आदि समस्त नाटकीय अंगो में लेखक अपनी कला-कृति में सफल हुआ है। रगमच की दृष्टि से भाषा नाटक के स्तर से कुछ ऊँची है, किन्तु वह साहित्यिक दृष्टि से सम्यक् समीचीन है। नाट्य-क्षेत्र को लेखक की यह प्रथम देन है। आशा है, लेखक की आगामी कृतियो से सरस्वती का भडार भविष्य में अधिकाधिक भरा जायगा।"

प्रधानाध्यापक
डी. ए. वी. हाई स्कूल, अजमेर।]

—डा० सूर्यदेव शर्मा
एम ए, एल टी.

" उन तारो को ही श्री ओंकारनाथ दिनकर ने अपनी कृति मुञ्जदेव में सचेष्ट होकर पिरोया है और अपनी अनूठी कल्पना तथा रचनात्मक शक्ति से उस महान् प्रतिमा को व उनके सम्पर्क में आने वाले समसामयिक अन्य उद्भट व्यक्तियों को साकार रूप प्रदान करने का एक सफल प्रयत्न किया है। जहाँ तक रस-निष्पत्ति का सम्बन्ध है, सम्पूर्ण नाटक-वस्तु अपनी गति से, प्रमुख पात्र अपनी सप्राणता में तथा देश-काल-गत परिस्थितियाँ अपने सार्थक नियोजन से एक गहरा प्रभाव छोड़ जाती है। उस युग के एक विराट् दृश्य में मुंज जैसे जीवन-रसनिष्ठ प्रतिभा को कूट राजनीति तथा एकान्त-साधना की कठोर छाया मे साहित्य व कला की माधुरी सिंचन करते हुए पाते हैं, तो आज के युग को भी एक धक्का अवश्य अनुभव होगा। मेरा विश्वास है कि श्री दिनकर की इस नाट्य-कृति का साहित्य मे स्वागत ही होगा।

अध्यक्ष, हिन्दी-विभाग,
गवर्नमेंट कालेज, अजमेर।

—डा० विष्णु अम्बालाल जोशी

भूमिका

विक्रमादित्य और राजा भोज भारतीय इतिहास के ऐसे उज्ज्वल रत्न हैं जिनकी उदारता और न्याय-प्रियता की कहानियां लोगो की जिह्वा पर ही रम-रम कर अमर हो गई है। इन दोनो नरेशो का सम्बन्ध मालवा-प्रान्त स्थित उज्जयिनी नगरी से रहा है। विक्रमादित्य के विषय में तो इतिहास और साहित्य के क्षेत्र में फिर भी कुछ छान-बीन होती रही है, पर राजा भोज के सम्बन्ध की प्रमाणित सामग्री अभी बहुत कम उपलब्ध हो पाई है। राजा भोज की स्थिति विक्रम की ११वी शताब्दी में मानी जाती है। मुञ्जदेव भोज के पितृव्य थे जो पृथ्वीवल्लभ नाम से प्रसिद्ध थे। इनके और तैलगण की राजकुमारी मृणालवती के प्रेम-सम्बन्धी दोहे भी अपभ्रंश साहित्य में मिलते हैं। यही मुञ्जदेव इस नाटक के नायक हैं।

कथानक के निर्माण में दिनकर जी ने ऐतिहासिकता की रक्षा का पूरा ध्यान रखा है। ऐतिहासिक घटनाओ के शुष्क अस्थि-पञ्जर पर मानव-हृदय की शाश्वत भावनाओ का सरस आवरण चढा कर युग विशेष को साकार बना देना ही ऐतिहासिक नाटककार का लक्ष्य होता है; और इसमें इस नाटक के लेखक को पर्याप्त सफलता मिली है। यद्यपि राज-महल से बाहर विकसित होने वाले तत्कालीन जन-जीवन के चित्रण का इसमें अभाव सा है, परन्तु इसका कारण नाटक के विषय

की सीमाएँ हैं, जिनकी अवहेलना करने पर कथानक के गठन में शिथिलता आ जाने की आशका थी। नाटक का अन्त मुञ्जदेव की मृत्यु में होता है, परन्तु लेखक ने इस घटना को दृश्य-रूप न देकर सूच्य ही रखा है। इस प्रकार उसने जहाँ एक ओर अपने नाटक को विषादान्त बनाया है, वहाँ दूसरी ओर सस्कृत नाटको के वर्जित दृश्य वाले सिद्धान्त की भी रक्षा की है।

पात्रो में मुञ्जदेव, स्यून-नरेश भिल्लमराज एव मृणालवती का चरित्र-चित्रण अच्छा बन पडा है। तीनो का जीवन अन्तर्द्वन्द्व से परिपूर्ण है। भोज को मरवाने के षड्यन्त्रों में स्वीकृति दिलवाकर गरिमावान मुञ्जदेव की मानवोचित दुर्बलता का परिचय दिलाया गया है, परन्तु उनकी सत्प्रवृत्तियाँ अधिक देर तक दबी नही रह पाती और जब उनका पश्चात्ताप उभरता है, तो उनके प्रायश्चित्त का चित्रण भी उनके गौरव के अनुकूल ही हुआ है। स्यून-नरेश भिल्लमराज प्रकृति से स्वतन्त्रता-प्रेमी हैं, पर परिस्थितियो ने उन्हे तैलगण का दास (महासामन्त) बना डाला है। वे बार-बार अपने इस परिस्थिति-जन्य दासत्व को भूल जाते हैं और उनकी स्वाधीन प्रकृति और उत्कट देश-प्रेम मुखरित हो उठता है। उन्हे सरकस के शेर की भाँति ही मृणालवती और तैलपराज को नियन्त्रण में रखना पडता है। मृणालवती में 'सयम' और 'स्वभाव' का कौतूहलपूर्ण सघर्ष है। वह नारी होकर भी प्रमाद की 'मनसा' और 'छलना' की-सी क्रूरता धारण करने का प्रयास करती है, परन्तु अन्त में मुञ्ज का सम्पर्क उसकी नारी-सुलभ सरसता और प्रेम को जागृत कर देता है और वह जिस पर शासन करना चाहती थी, उसी के हाथ की कठपुतली बनकर देश-द्रोह तक करने पर उतारू हो जाती है। मृणालवती के चरित्र में नारी-हृदय की अन्तर्वृत्तियो का सुन्दर चित्रण हुआ है। अन्त में मुञ्जदेव

को मृत्यु में उसी की आकाक्षाओ का हनन होता है, जो नाटक के अन्त को विषाद पूर्ण बना देता है।

नाटक के कथोपकथन सस्कृत प्रधान हिन्दी मे है जो नाटक के उपयुक्त ऐतिहासिक वातावरण का सृजन करने में पूर्ण सफल है, यद्यपि अभिनय की दृष्टि से उनकी सफलता सदिग्ध ही वनी रहेगी। मुञ्ज के पश्चात्ताप वाले दृश्य का कथोपकथन विशेप भावपूर्ण, चुस्त और चित्ताकर्पक है। मुञ्ज और मृणाल के कथोपकथन व्यञ्जना प्रधान और तर्क-पूर्ण है। काचनमाला और कवि पद्मगुप्त के कथोपकथन भावुकतापूर्ण है। कही-कही पात्रो के भाषण कुछ अधिक लम्बे हो गए है। स्वगत कथन का प्रयोग इस नाटक में वहुत कम हुआ है और सगीत का नितान्त अभाव है। यह इस नाटक की विशेपता है।

नाटक की भाषा तत्सम शब्दो से पूर्ण साहित्यिक हिन्दी है, जो अनायास ही प्रसाद जी की याद दिला देती है। वातावरण का चित्रण करने के लिए लेखक का शब्द-चयन प्रशसनीय है। नाटक की भाषा लेखक के भावो की अभिव्यक्ति मे पूर्ण समर्थ और सवल है। शिथिल होने से लेखक ने उसे कुशलतापूर्वक वचाया है।

अन्त में श्री ओकारनाथ दिनकर के इस नाटक को साहित्य-प्रेमियो के समक्ष प्रस्तुत करते हुए मुझे इस वात की विशेप प्रसन्नता

इसी भूमि पर भवभूति वाणभट्ट, महाकवि कालिदास, धन्वन्तरि, क्षपणक, अमरसिंह, वैतालभट्ट, शकु, घटकर्पर, वराहमिहिर, विद्यापति आदि ने अपने काव्य का अमल-धवल प्रकाश विकासोन्मुख किया था।

और अशोक महान् ने यही बैठकर मौर्य-साम्राज्य के सम्राट्-पद को प्रतिष्ठित किया। गुप्तवंशीय चन्द्रगुप्त द्वितीय, श्री हर्षवर्द्धन, काश्मीर-नरेश लालादित्य तथा दक्षिण के राष्ट्रकूट[1] नरेशो ने भी इस प्रदेश पर अपना आधिपत्य स्थापित किया था। यहाँ से प्रात स्मरणीय वीर विक्रमादित्य का शौर्य तथा उनके ज्येष्ठ भ्राता भर्तृहरि के अटल वैराग्य की धवल-कीर्ति गगनोन्नत है।

इस प्रकार विक्रम की नवमी शती के लगभग यहाँ पर परमार वंशी राज्य का आरम्भ हुआ। इसी के उत्तराधिकारियो में श्रीहर्ष (सिंहदन्त) छठे और श्री मुञ्जदेव सातवें नृपति थे। श्री मुञ्जदेव के कवियो में धनंजय, पद्मगुप्त, हलायुध, धनिक, वनपाल प्रभृति प्रमुख थे। इनके काव्य-सृजन से मुञ्जदेव तथा अवन्तिका की कीर्ति पूर्ण विकसित थी।

मुञ्जदेव को वाक्पतिराज (द्वितीय) भी कहा है। इन्होंने परमभट्टारक, महाराजाधिराज, परमेश्वर, अमोघवर्ष, पृथ्वीवल्लभ, उत्पलराज, नरेन्द्रदेव के विरुद वारण किये। अमोघवर्ष[2], श्री वल्लभ[3], पृथ्वीवल्लभ[4] तथा नरेन्द्रदेव[5] मुञ्जदेव की दक्षिण की राष्ट्रकूट-विजय के सूचक हैं। इनका जीवन-काल वि० सं० लगभग १०१० से १०५४ तक माना गया है।

---

१ आर्कियोलोजिकल आॅफ इण्डिया, वार्षिक रिपोर्ट १९०३ ईस्वी।

२ ३, ४, ५ इण्डियन ऐण्टी क्वेरी ग्रंथ ६ तथा १४।

मुञ्जदेव की युद्ध-विजय

मुञ्जदेव ने पूर्व मे कलचुरि-नरेश युवराजदेव द्वितीय (वि० स० १०३२–१०५७) को परास्त कर उसकी राजधानी त्रिपुरी[1] को लूटा था। उत्तर मेदपाट के गुहिलो को परास्त किया। इस समय नरवाहन-नरेश का उत्तराधिकारी शक्तिकुमार (वि० स० १०३४) उस प्रदेश का शासक था। मुञ्जदेव ने आहाड[2] (वर्तमान उदयपुर स्टेशन के निकट आहार) तथा चित्तौड[3] तथा उसके आसपास मालवा के समीपवाला प्रदेश अधीन कर लिया था। शक्तिकुमार ने भाग कर हस्तिकुण्डी के राष्ट्रकूट धावल[4] (चतुर्थ) की शरण ली थी। इस विजय से उत्साहित होकर मुञ्जदेव ने मारवाड[5] पर आधिपत्य किया। इस समय चाम्न्स नृपति शोभित का उत्तराधिकारी बलिराज था। मालवेन्द्र ने हूणो पर भी विजय प्राप्त की[6]।

गुजरात के चालुक्यो से युद्ध कर उनके नृपति मूलराज प्रथम (वि० स० ९९८-१०४५) को परास्त किया। मूलराज अपने परिवार सहित मारवाड़ के वन-प्रदेशो में छिपता रहा। बीजापुर के लेख के अनुसार चालुक्य वाहिनियाँ भय-त्रस्त हो उठी थी। मूलराज ने धावल से शरण चाही, जिसे उसने तुरन्त स्वीकार कर लिया था। उसके पश्चात् मुञ्जदेव ने लाट प्रदेश[8] (माही तथा ताप्ती के बीच का प्रदेश) विजित किया। इस समय चालुक्य बारप्पा[9] उन पर शासन करता था।

१—ऐपिग्राफिका इण्डिका भाग १० तथा उदयपुर प्रशस्ति।

२—ऐपिग्राफिका इण्डिका भाग १० पृष्ठ २०।

३—नागरी प्रचारिणी पत्रिका काशी भाग ३।

४, ५, ६, ७, ९—हिस्ट्री ऑफ परमार डायनेस्टी, डी० सी० गागुली द्वारा विरचित।

इसी भूमि पर भवभूति वाणभट्ट, महाकवि कालिदास, धन्वन्तरि, क्षपणक, अमरसिंह, वैतालभट्ट, शंकु, घटकर्पर, वराहमिहिर, विद्यापति आदि ने अपने काव्य का अमल-धवल प्रकाश विकासोन्मुख किया था।

और अशोक महान् ने यहीं बैठकर मौर्य-साम्राज्य के सम्राट्-पद को प्रतिष्ठित किया। गुप्तवंशीय चन्द्रगुप्त द्वितीय, श्री हर्षवर्द्धन, काश्मीर-नरेश ललादित्य तथा दक्षिण के राष्ट्रकूट[1] नरेशो ने भी इस प्रदेश पर अपना आधिपत्य स्थापित किया था। यहाँ से प्रात स्मरणीय वीर विक्रमादित्य का शौर्य तथा उनके ज्येष्ठ भ्राता भर्तृहरि के अटल वैराग्य की धवल-कीर्ति गगनोन्नत है।

इस प्रकार विक्रम की नवमी शती के लगभग यहाँ पर परमार वंशी राज्य का आरम्भ हुआ। इसी के उत्तराधिकारियो में श्रीहर्ष (सिंहदन्त) छठे और श्री मुञ्जदेव सातवे नृपति थे। श्री मुञ्जदेव के कवियो मे धनजय, पद्मगुप्त, हलायुध, धनिक, धनपाल प्रभृति प्रमुख थे। इनके काव्य-सृजन से मुञ्जदेव तथा अवन्तिका की कीर्ति पूर्ण विकसित थी।

मुञ्जदेव को वाक्पतिराज (द्वितीय) भी कहा है। इन्होंने परमभट्टारक, महाराजाधिराज, परमेश्वर, अमोघवर्ष, पृथ्वीवल्लभ, उत्पलराज, नरेन्द्रदेव के विरुद धारण किये। अमोघवर्ष[2], श्री वल्लभ[3], पृथ्वीवल्लभ[4] तथा नरेन्द्रदेव[5] मुञ्जदेव की दक्षिण की राष्ट्रकूट-विजय के सूचक हैं। इनका जीवन-काल वि० स० लगभग १०१० से १०५४ तक माना गया है।

---

१ आर्किऑलोजिकल आॅफ इण्डिया, वार्षिक रिपोर्ट १९०३ ईस्वी।

२ ३, ४, ५ इण्डियन ऐण्टी क्वेरी ग्रंथ ६ तथा १४।

मुञ्जदेव की युद्ध-विजय

मुञ्जदेव ने पूर्व में कलचुरि-नरेश युवराजदेव द्वितीय (वि० स० १०३२–१०५७) को परास्त कर उसकी राजधानी त्रिपुरी[1] को लूटा था। उत्तर मेदपाट के गुहिलो को परास्त किया। इस समय नरवाहन-नरेश का उत्तराधिकारी शक्तिकुमार (वि० स० १०३४) उस प्रदेश का शासक था। मुञ्जदेव ने आहाड[2] (वर्तमान उदयपुर स्टेशन के निकट आहार) तथा चित्तौड[3] तथा उसके आसपास मालवा के समीपवाला प्रदेश अधीन कर लिया था। शक्तिकुमार ने भाग कर हस्तिकुण्डी के राष्ट्रकूट धावल[4] (चतुर्थ) की शरण ली थी। इस विजय से उत्साहित होकर मुञ्जदेव ने मारवाड[5] पर आधिपत्य किया। इस समय चामन्त नृपति शोभित का उत्तराधिकारी बलिराज था। मालवेन्द्र ने हूणो पर भी विजय प्राप्त की[6]।

गुजरात के चालुक्यो से युद्ध कर उनके नृपति मूलराज प्रथम (वि० स० ९९८-१०४५) को परास्त किया। मूलराज अपने परिवार सहित मारवाड के वन-प्रदेशो मे छिपता रहा। बीजापुर के लेख के अनुसार चालुक्य वाहिनियाँ भय-त्रस्त हो उठी थी। मूलराज ने धावल से शरण चाही, जिसे उसने तुरन्त स्वीकार कर लिया था। उसके पश्चात् मुञ्जदेव ने लाट प्रदेश[8] (माही तथा ताप्ती के बीच का प्रदेश) विजित किया। इस समय चालुक्य बारप्पा[9] उस पर शासन करता था।

१—ऐपिग्राफिका इण्डिका भाग १० तथा उदयपुर प्रशस्ति।

२—ऐपिग्राफिका इण्डिका भाग १० पृष्ठ २०।

३—नागरी प्रचारिणी पत्रिका काशी भाग ३।

४, ५, ६, ७, ९—हिस्ट्री ऑफ परमार डायनेस्टी, डी० सी० गागुली द्वारा विरचित।

रणरग भीम, आहवमल्ल, भुजवल चक्रवर्ती आदि विरुद धारण किये थे। तैलपराज ने छ वार अवन्तिका पर आक्रमण कर उसे विजित करने का स्वप्न देखा, किन्तु निरन्तर पराभव ही मिलती रही। कई वार मुञ्जदेव उसे बन्धन में लेकर उज्जयिनी ले गये और पुन आक्रमण न करने का आश्वासन पाकर छोडते रहे। सातवी वार तैपलराज ने स्यूनदेश के भिल्लमराज के सहयोग से पुन युद्ध किया और सफलता का वरण किया।

स्यूनदेश

स्यूनदेश (सेउणदेश वर्तमान दक्षिण खानदेश) यादव वशी भिल्लमराज द्वितीय के अधीन था[1]। यह तैलपराज के महासामन्त थे। इनके पिता वाविश्ना ने राष्ट्रकूट-नरेश कृष्णराज को अपनी सेवाएँ समर्पित कर रखी थी। राष्ट्रकूट पराभव के उपरान्त ऐसा अनुमान होना है कि इन नरेशो ने अपनी सेवाएँ चालुक्य तैलपराज को समर्पित कर दी[2]। स्यूनदेश का पूर्व नाम चन्द्रादित्यपुर (दडकारण्य) था। जो देवगिरि तथा वाद में दौलतावाद कहलाया। भिल्लमराज के पितामह स्यूनचन्द्रदेव ने स्यूनपुर वसाया था। स्यूनदेश परमारवशी मुञ्जदेव की राज्य-सीमा से सन्नद्ध था। इसी प्रदेश में सह्याद्रि प्रदेश था। सह्याद्रि पवत आज भी विद्यमान् है। उस प्रदेश में विश्व की महान् कला अजन्ता और एलारा की गुफाएँ युग युगान्तर से गगनोन्मुखी हो रही है। एलोरा का प्राचीन नाम एलापुर था। अब यह प्रदेश नासिक और दौलतावाद के मध्य में स्थित है। यह है इस नाटक की ऐतिहासिक पृष्ठ-भूमि।

१-२—अर्ली हिस्ट्री [illegible] ...कन, आर० जी० भण्डारकर तथा प्रबन्ध चिन्ता[illegible]

पात्रो के सम्बन्ध में

इस नाटक में आयोजित मुञ्जदेव, श्रीहर्ष, सिवुलराज, भोजराज, रुद्रादित्य, वत्सराज, धनिक, कवि पद्मगप्त, भिल्लमराज, मृणालवती, सत्याश्रय, लक्ष्मीदेवी, जक्कलादेवी, शशिप्रभा सभी ऐतिहासिक पात्र है। मुञ्जदेव की महिषी चित्रागदा नाम भर काल्पनिक है, उनका अस्तित्व रहा है। भिल्लमराज की पुत्री काचनमाला तथा परिचारिकाएँ भैरवी, सुलेखा और सुनन्दा की सज्ञाएँ कल्पना के आधार पर टिकी हुई है। राजपुरोहित, सेनाध्यक्ष, सामन्त, गुप्तचर, परिपद्गण सैनिक प्रहरी प्रभृति शासन-परम्परा में आते है।

हमारे देश की गौरवकालीन उपरोक्त विखरी सामग्री को एक सूत्र में बांधकर मैंने मुञ्जदेव जैसी महान् विभूति के व्यक्तित्व को अकित करने का प्रयास किया है। नाट्यवस्तु समीकरण में मेरे सन्मुख कठिनाइयाँ तो थी ही, साथ ही रगमच के अभाव में उस वस्तु का रगमच के अनुरूप नियोजन करना यह सब से कठिन समस्या थी जिसके कारण इस नाटक को प्रस्तुत करते हुए मै आज भी सशकित हो उठता हूँ, पर मुझे आशा है कि हिन्दी-जगत् मेरी इस कृति का स्वागत करेगा। भगवान् बुद्धदेव के वाद इसी परमार वश की शृखला मे मेरा द्वितीय नाटक भोजदेव है। आशा है, इसे भी अपने पाठको के समक्ष शीघ्र ही प्रस्तुत कर सकूँगा।

अजमेर,

रक्षा-बन्धन

२०११ वि०।

—ओंकारनाथ दिनकर

कथासार

इस नाटक का कथानक इस प्रकार आरम्भ होता है—

श्रीहर्ष के चिरकाल तक पुत्र नहीं हुआ । वह स्वय तथा राजमहिषी इससे चिन्तित हो उठे । नारी का मातृत्व कु ठित न रह सका । चित्त भ्रमित रहने लगा । उसका निराकरण करने के हेतु देशाटन की इच्छा जागृत हुई । व्यवस्था हुई—और उसी समय एक मुञ्जवन-प्रदेश में एक नवजात शिशु उन्हे उपलब्ध हुआ । दैवगति प्रबल हुई, महिष्मती को भी, बाद में पुत्र-लाभ हुआ और उसका नाम सिंधुल रखा गया ।

इस प्रकार अवन्तिका-नरेश श्रीहर्ष (सिंहदत द्वितीय) को दो पुत्ररत्न उपलब्ध हुए, मुञ्जदेव और सिंधुलराज । श्रीहर्ष ने सिंधुलराज के होते हुए भी मुञ्जदेव को ही अपना युवराज घोषित किया । कालान्तर से वह अवन्तिका की शासन-व्यवस्था करते रहे । इसी बीच सिंधुलराज को पुत्ररत्न प्राप्त हुआ, जिसका नाम भोज रखा गया । किन्तु मुञ्जदेव के कोई पुत्र न हुआ । मुञ्जदेव और राजमहिषी चित्रागदा को पुत्र की लालसा ने झकझोरा । उधर महामात्य रुद्रादित्य मुञ्जदेव को भोज के प्रति जागरूक रहने तथा उसे अपने मार्ग से हटाने के लिए प्रेरित करते रहे । राजमहिषी तो भोज को पाकर सतुष्ट हो गई, किन्तु मुञ्जदेव की आत्मा में अन्तर्द्वन्द्व चलता ही रहा, सहयोगी बना महामात्य रुद्रादित्य ।

और एक दिन जब कुमार भोज विद्याध्ययन पूरा करके उज्जयिनी लौटने को हुए, तो स्वागत-समारोह का आयोजन किया गया । स्वागत-सम्मेलन की सज्जा दिखाकर—रुद्रादित्य ने मालवेन्द्र मुञ्जदेव का मन पुन भ्रमित करना चाहा । दैववशात् अट्टालिका से उतरते-उतरते मुञ्जदेव का पैर फिसला—तो वह भोज की हत्या के

षड्यन्त्र के लिए प्ररक रहा और रुद्रादित्य उसे कार्यान्वित करान पर मुद्रा-अकित करा सका। यह कर्म सौपा गया वगराज वत्सराज को। रुद्रादित्य के समान यह भी मुञ्जदेव का वाल-सहचर था। वत्सराज से भोज हत्या हो न सकी तो राज-भय से, उसने भोज को छिपा दिया। इस हेय कर्म से मुञ्जदेव की आत्मा कराह उठी और जव उसने सुना कि भोज की हत्या कर दी गई है, तो वह भोज के वात्सल्य-स्नेह से व्यथित हो उठा। उसने प्रायश्चित्त कर कलंक-कालिमा मेटनी चाही। वह जीवित ही अग्नि-चिता में प्रवेश करने को सन्नद्ध हो गए। सत्य पर आश्रित प्रायश्चित्त को देखकर वत्सराज ने भोज के प्रति सत्य प्रकट कर दिया। भोज को जीवित पाकर मुञ्जदेव ने उसे अवन्तिका का युवराज घोषित कर दिया।

तैलगणाधीश तैलपराज (द्वितीय) ने अवन्तिका-विजय के लिए निरतर युद्ध किए। प्रारम्भिक युद्धो में वह असफल ही रहा और उज्जयिनी मे जा-जाकर अपनी पराजय अवन्तिका के इतिहास में अकित करता रहा। एक ओर मुञ्जदेव स्व-कीर्ति-कौमुदी मना रहे थे, तो दूसरी ओर तैलगण-नरेश तैलपराज ने स्यूनदेश की शक्ति को ध्वस कर, भिल्लमराज को तैलगण का महासामन्त वना कर, अपना माडलिक वना लिया और सातवी वार अवन्तिका पर आक्रमण कर दिया, किन्तु सफल न हो सका। मुञ्जदेव नित्य का झझट मिटाने के लिए स्यून पर आधिपन्य करता हुआ गोदावरी के पार तैलगण में प्रवेश कर गया। यहाँ युद्ध हुआ और भिल्लमराज ने मुञ्जदेव पर विजय पा ली। मुञ्जदेव वन्धक वना लिए गये। तैलपराज ने उन्हे मृत्युदण्ड देना अभीष्ट समझा, किन्तु भिल्लमराज के कथन पर उन्हे केवल वन्धक वना कर रखना ही उचित समझा। कालान्तर में तैलपराज ने मुञ्जदेव को मृणालवती का आध्यात्म-शिक्षक नियुक्त किया।

मुञ्जदेव की भोजन-व्यवस्था भी वही स्वय करती थीं। इस अवधि में दोनों में प्रणय जागृत हो गया और इसका भेद उस समय प्रकट हुआ, जब कि एक रात्रि को स्वय मृणालवती मुञ्जदेव को तैलपराज के शयन कक्ष में ले गई। वहाँ तैलपराज और मुञ्जदेव में द्वन्द्व हुआ। तैलपराज आक्रान्ता हुए, किन्तु सफल न हो सके। मुञ्जदेव ने आघात करना चाहा, किन्तु मृणालवती ने मुञ्जदेव को रोक दिया। षड्यन्त्र पूरा था—किन्तु असफल हो गया और मुञ्जदेव को पुन बन्दी बना लिया गया। इस षड्यन्त्र का सूत्राधार था कवि पद्मगुप्त, जो स्यून-विजय के पश्चात् ही तैलगणराज के पास सन्धि-विग्राहक के रूप में आया था, किन्तु बन्धक बनाकर भिल्लमराज को उसका नियन्त्रण सौंपा गया था। यहाँ भिल्लमराज की पत्नी लक्ष्मीदेवी स्वदेश-भक्ति के ममत्व के कारण योग देती रही। कवि पद्मगुप्त ने भिल्लमराज की पुत्री काचनमाला को अवन्तिका की ओर आकृष्ट कर दिया। तैलप-वध के षड्यन्त्र में असफल होने पर भोजराज के साथ अवन्तिका पहुँच गई। भिल्लमराज ने भी सामन्त-भार से मुक्त होकर अपने देश प्रयाण कर जाना उचित समझा। तैलपराज ने तैलगण में फैली अराजकता की कल्पना कर, उन्हे मुक्त कर भी दिया। भिल्लमराज अपनी पत्नी और सैनिकों के साथ वहाँ से यह आशा लेकर चले कि स्यून पहुँच कर मुञ्जदेव को मुक्त करायेंगे।

सह्याद्रि में मालव-सैनिक प्रतीक्षा में थे ही। भोजराज तथा कवि पद्मगुप्त तैलगण से निकल ही चुके थे। उनकी योजना थी कि अधिकाधिक मालव-समर-वाहिनियाँ लेकर पुन तैलगण पर आक्रमण करेंगे और मुञ्जदेव को मुक्त कराकर विजय-श्री उपलब्ध करेंगे, किन्तु वहाँ पहुँच कर उन्होंने सुना—

"गत मुञ्जे यश पुञ्जे . . ."

पात्र-परिचय

पुरुष-पात्र

मुञ्जदेव—अवन्तिका नरेश, श्रीहर्ष के दत्तक पुत्र।

श्रीहर्ष—अवन्तिका के अधिपति, मुञ्जदेव के पिता।

रुद्रादित्य—मुञ्जदेव के वाल-साथी, वाद मे मुञ्जदेव के महामात्य।

सिंधुलराज—मुञ्जदेव के अनुज, श्रीहर्ष के द्वितीय पुत्र।

भोजराज—मुञ्जदेव का भतीजा, सिंधुलराज के पुत्र।

तैलपराज—तैलगण के अधिपति, मृणालवती के भ्राता, मुञ्जदेव के प्रतिद्वन्द्वी।

भिल्लमराज—स्यूनदेश के अधिपति, वाद में तैलगण के महासामन्त।

सत्याश्रय—तैलगण के युवराज, तैलपराज के ज्येष्ठ पुत्र।

कवि पद्मगुप्त—मुञ्जदेव की परिषद् के कविरत्नो में से एक, वाद में संधि-विग्राहक।

वत्सराज—मुञ्जदेव के मित्र तथा अवन्तिका के अधीन वगदेश के राजा।

इसके अतिरिक्त राजपुरोहित, सेनाध्यक्ष, सामन्तगण, गुप्तचर, परिषद्गण, सैनिक, प्रहरी इत्यादि।

स्त्री-पात्र

चित्रांगदा—मुञ्जदेव की सहधर्मिणी, अवन्तिका की महादेवी राजमहिषी

शशिप्रभा—सिंधुलराज की धर्मपत्नी, भोजराज की माता ।

मृणालवती—तैलपराज की बहिन, तैलगण की भाग्य-विधात्री ।

कांचनमाला—भिल्लमराज की पुत्री ।

लक्ष्मीदेवी—भिल्लमराज की पत्नी, स्यूनदेश की रानी ।

जक्कलादेवी—तैलपराज की पत्नी, तैलगण की महिषी ।

सुलेखा—कांचनमाला की सहेली, स्यूनदेशवासिनी ।

इनके अतिरिक्त भैरवी, सुनन्दा तथा अन्य परिचारिकाएँ ।

मुञ्जदेव

अंक एक

पहला दृश्य

काल—विक्रम की ग्यारहवी शती का प्रारम्भ ।

स्थान—अवन्तिका प्रासाद का निकटवर्ती उद्यान भाग ।

(आधार-स्तम्भो पर आश्रित लता-मण्डप पवन के मृदु झकोरो से रह-रह कर चचल हो उठता है । लताओ में अनेक रग-विरंगे पुष्प खिल रहे है, धरती हरित दूर्वा से आच्छादित है । उद्यान में पश्चिम की ओर स्फटिक शिला निर्मित एक जल-कुण्ड है । उसमें कुछ पक्षी जल-क्रीड़ा कर रहे हैं । मालव-कुमार मुञ्ज दूर खडे-खडे इस कौतुक को देख रहे हैं । वहाँ से हट कर वे एक लता-मण्डप के समीप आते है और लता की टहनी से कुछ कलियाँ तोडकर उन्हे सूँघते है । सहसा नेपथ्य में शंख, घटे और तूर्य-ध्वनि सुनाई पडती है, वाद्य-ध्वनि गम्भीर होती है । उनकी मुद्रा गम्भीर हो जाती है । पुनः धीरे-धीरे भाव-परिवर्तन होता है । समय : प्रभात ।)

मुञ्जदेव—(हर्षातिरेक में) मगलवाद्य ! ज्ञात होता है, माता कष्ट से विमुक्त हुईं । (दृष्टि कुछ ऊपर करके) यह कौन

आ रहा है ? परिचारिका, सुनन्दा ! उसकी गति प्रदर्शित करती है, वह शुभ संवाद देने आ रही है। हम प्रस्तुत हैं, स्वागतार्थ। परिचारिके ! कहो क्या समाचार है ?

[परिचारिका का प्रवेश]

परिचारिका—(नत-मस्तक) युवराज, बधाई ! राजमाता ने बालक को जन्म दिया है।

मुञ्जदेव—शुभ हो।

[अपनी मुक्ता-माला उतार कर उसकी ओर बढ़ाते हैं, परिचारिका उसे ग्रहण करती है।]

परिचारिका—(नत-मस्तक) युवराज की जय हो !

मुञ्जदेव—स्वागत, मालव-कुल-प्रदीप स्वागत ! सुनन्दा ! हम पिताश्री के दर्शन करना चाहते हैं।

परिचारिका—(नत-मस्तक) श्रीमान् मन्त्रणा-कक्ष में हैं।

मुञ्जदेव—अस्तु।

[मुञ्जदेव जाना चाहते हैं, रुद्रादित्य का प्रवेश, परिचारिका का प्रस्थान]

मुञ्जदेव—आइये, रुद्रादित्य, सुना तुमने !

रुद्रादित्य—कुमार, श्रीमन् के अनुज ने जन्म लिया है। जन्म-लग्न के अनुसार उन्हें सिन्धुल की संज्ञा से अलंकृत किया जाएगा।

मुञ्जदेव—सिन्धुल, सज्ञा तो सुन्दर है।

रुद्रादित्य—जी, अति सुन्दर।

मुञ्जदेव—(आनन्द-विभोर होते हुए) आज का वातायन हमें क्या कह गया है! वह सन्देश मधुर है, कह गया है, आज हमारे अनुज ने जन्म लिया है, कितना सुखद है, कितना कल्याणकारी! रुद्रादित्य!

रुद्रादित्य—हाँ, युवराज और सिन्धुल! आज का दिवस अपूर्व है, स्मरणीय है, श्रीमान् को अनुज मिला है।

मुञ्जदेव—(रुद्रादित्य की ध्वनि से स्तम्भित होकर) रुद्रादित्य, क्या कहा आपने? (पुन विचारपूर्वक) रुद्रादित्य! आपका कोई गूढ अभिप्राय तो नही है?

रुद्रादित्य—(कुछ सँभल कर) नहीं युवराज, मेरा कोई अभिप्राय नही।

मुञ्जदेव—रुद्रादित्य! आपके सम्भाषण से कुछ विचित्रता झलकती है!

रुद्रादित्य—युवराज मुझ में दोष पा रहे है?

मुञ्जदेव—रुद्रादित्य, दोषरोपण तो नही है, हाँ हमे कुछ ऐसा प्रतीत हुआ है कि· ·· ·······

रुद्रादित्य—युवराज, मैंने आपका विश्वास पाया है, फिर

[परिचारिका का प्रवेश]

परिचारिका—(नत मस्तक) युवराज, परमार-कुल-शिरोमणि श्रीमान् मालवेन्द्र प्रतीक्षा कर रहे हैं।

मुञ्जदेव—(विस्मयपूर्वक) अरे, हाँ, हम व्यर्थ की वार्तों में उलझ गए चलिए, रुद्रादित्य ।

[परिचारिका का प्रस्थान]

रुद्रादित्य—पधारिये युवराज, नरेन्द्र प्रतीक्षा में है। मुझे भी पहुँचना था, विलम्ब हो रहा है।

[दोनों का प्रस्थान]

(पट परिवर्तन)
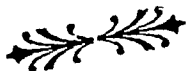
दूसरा दृश्य

काल—पूर्ववत् ।

स्थान—अवन्तिका के राज-प्रासाद का मत्रणा-कक्ष ।

(कक्ष विशेष समृद्ध और कला-प्रसाधनो द्वारा निर्मित दृष्टिगोचर हो रहा है । कक्ष के आधार-स्तम्भो का निर्माण वस्तु-कला का जीता-जागता प्रतीक है । कक्ष मे सज्जा के अनेक साधन एकत्रित है । उसकी छत का निम्न भाग वडा ही चित्ताकर्षक है । उसमें सुहावने दीप-दान झूल रहे हैं । आधार-स्तम्भो के मध्य रजत-शलाकाएँ पडी हुई है । इन शलाकाओ में रेशमी परिवेष्ठन बँधे है । उनमें यत्र-तत्र मुक्ता-तोरण लटक रहे हैं । कक्ष की भित्तियो पर विविध रगो मे चित्र अंकित किये गये हैं । कक्ष का विछावन भी चित्ताकर्षक है । मालवेन्द्र श्रीहर्ष रत्न-मणियो से मण्डित पर्यङ्कासन पर पीठिका-आधार के सहारे बैठे हैं । पर्यङ्कासन के समीप ही पादपीठ रखा है, जिस पर मालवेन्द्र एक चरण रखे हुए है । उनके निकट ही कुछ सुन्दर रजत मच रखे है जो रिक्त हैं। दक्षिण भाग में स्थित एक स्वर्ण-रजत मिश्रित मच पर कुल-पुरोहित बैठे हैं । समय : पूर्ववत् ।)

राज-पुरोहित—(गृह-गणित-पत्रिका देखकर) महाराज, बालक में राजयोग के चिन्ह तो हैं, किन्तु इतने बली नही हैं ।

श्रीहर्ष—(साश्चर्य) बली नही है ! तो फिर ?

सूर्योदय कही मुञ्ज और सिन्धुल के जीवन में झंझा न उत्पन्न कर दे। कही यह झंझावात सघर्ष को जन्म न दे बैठे। भ्रातृत्व रक्त-पिपासु न हो जाय।

मुञ्जदेव पितृदेव, आप यह क्या विचार उठे ?

श्रीहर्ष—वत्स, तुम्हारी मुख-मुद्रा मलीन-सी प्रतीत हो रही है।

मुञ्जदेव—(साश्चर्य) पिता श्री, नही तो।

श्रीहर्ष—मुञ्ज, तुम्हारे स्वस्थ, निर्विकार तथा भावुक मानस में व्यथाकुरो ने प्रवेश तो नही पा लिया है ? हमारी धारणा, सम्भव है, मिथ्या हो।

मुञ्जदेव—पितृदेव ! यह शरीर तो अनुभव कर नही पा रहा है। यह तो आपका वात्सल्य है।

श्रीहर्ष—वत्स ! तुम्हारी पितृभक्ति में सन्देह करना भ्रम ही है, इतर कुछ नही हो सकता। पुनश्च तुम स्वकीय चिन्ता में हमें भी भागीदार कर सकते, तो श्रेष्ठ था। हमें यह कदापि अभीष्ट नही होगा कि मुञ्ज में चिन्ता अथवा व्यथा प्रविष्ट हो जाएँ। हम तो उसे स्वस्थ ही देखना चाहते है।

मुञ्जदेव—पितृदेव ! आप निशक रहे, मुझे कोई चिन्ता व्यथित नही कर रही है, मैं पूर्ण स्वस्थ हूँ।

श्रीहर्ष—यही तो हमारी अभिलाषा है वत्स, कामाग्नि शकर तुम्हारे समस्त शुभ सकल्प पूर्ण करें।

मुञ्जदेव—(साश्चर्य) पिताश्री ! जिन पितृश्री के चरणों के प्रताप एव ऐश्वर्य की छाया मे इतनी वय प्राप्त की है, अनन्त सुखों का उपभोग किया है, दुख क्या है, जीवन में

कभी अनुभव नही हुआ। आपका वरद-हस्त सदा रहेगा मेरे लिये जीवन का सौभाग्य ! यही क्या कम है ?

श्रीहर्ष—यथेष्ट वत्स ! तो सुनो, हम तुम्हारे समक्ष चिर-पालित एक रहस्य उद्घोषित करना चाहते है।

मुञ्जदेव—(साश्चर्य) रहस्य !

श्रीहर्ष—हाँ, रहस्य। नारी-हृदय ही तो ठहरा। तुम्हारी माता की इच्छा प्रवल होती जा रही थी कि मालव-प्रासाद प्रागरण में शिशु की कल्लोलमयी वाणी सुनें, किन्तु विधि के विधान को कौन मेट सकता है ? उनकी आशा फलवती न हो पाई। पुत्रकामना के हेतु उनका मन-मस्तिष्क निरन्तर भ्रमित रहने लगा।

मुञ्जदेव—(सश्चर्य) पुत्र-कामना !

श्रीहर्ष—और तव निश्चय हुआ देशाटन किया जाय। राजमहिषी को एकाकी जीवन व्यतीत करने की इच्छा हुई। उसी व्यवस्था के अनुसार हम राजमहिषी के साथ अवन्तिका से दूर मुञ्ज-वन-प्रदेश में जा रहे थे। हमने देखा, गुल्म-लताओ से परि-वेष्ठित झाड़ी के निकट एक शिशु क्रीड़ा में रत था, कृष्ण वर्ण मणिधर वालक के मस्तक को भानु-ताप से रक्षित करने के निमित्त अपना फरण विस्तीर्ण किये हुए था।

मुञ्जदेव—(साश्चर्य) वालक ! मणिधर !

श्रीहर्ष—हां वत्स, इस कौतुक को राजमहिषी ने अपलक दृष्टि से निहारा और नारी का मातृत्व उस ओर आकृष्ट हुआ, नारी हृदय मचल उठा। इस विकट सौदर्य-लीला का अवलोकन

कर राजमहिषी अभिभूत हुई, भय-त्रस्त नही, और आश्चर्य है कि उनकी टोह पाकर मणिधर वहां से सरक गया। क्षणान्तर हमने पाया, उनके अंक में वह बालक!

मुञ्जदेव—(साश्चय) राजमहिषी के अंक में बालक! मुञ्ज-वन में उपलब्ध बालक!

श्रीहर्ष—व्यथित न हो वत्स! सुनो, बालक के विशाल नेत्र, प्रशस्त उन्नत ललाट और उसके मुख-मण्डल की छवि तो निहारते ही बनती थी। उसे देख ऐसा प्रतीत हुआ कि उसमें राजयोग के समस्त चिन्ह विद्यमान हैं। दैव की इच्छा प्रबल देख, हमने उस दिव्य बालक को अपना पुत्र स्वीकार कर लिया।

मुञ्जदेव—(उत्तेजना में उठकर) तब मेरे पितृदेव मालवेन्द्र नही हैं। मेरी जननी

श्रीहर्ष—पुत्र! शान्त हो। सुनो, वही सन्निकट ही कल-कल निनाद से सरिता प्रवाहित हो रही थी। हम मन्त्र-मुग्ध उसके तीर की ओर बढ़ चले। वहां एक स्थान पर दो प्राणी शव पड़े थे। उनकी वेषभूषा उच्च कुलीन प्रतीत होती थी। हमारा कौतूहल बढ़ा। निकट पहुँचने पर देखा पुरुष-शव को। हमने अनुभव किया उस शरीर पर किसी विषाक्त जीव ने आक्रमण किया है। पुरुष को प्राण विसर्जन करते देख नारी उस वेदना से सिहर उठी होगी। उसने भी अपने पति का अनुगमन किया होगा।

मुञ्जदेव—(कातरतापूर्वक) तब मेरे माता पिता इस लोक में भी नहीं। मैं भ्रमित हूँ—यह रहस्योद्घाटन सत्य है या

जिसे मैं अब तक अपनी सत्ता में अनुभव करता आया हूँ वह

श्रीहर्ष—वत्स मुञ्ज ! व्यथा को त्यागो। हम तुम्हारी पितृ-भक्ति और अनुरक्ति से सन्तुष्ट है। शीघ्र ही परिषद् तुम्हें युवराज-पद पर आरूढ देखना चाहती है। स्वस्थता धारण करो मुञ्ज। तुम हमारे अभिजात पुत्र हो इसे समस्त मालव जान चुका है। हमने आज तक इस तथ्य को गोपनीय रखा है और भविष्यत् तुम्हारे उत्तरदायित्व पर टिका है।

मुञ्जदेव—(स्वस्थता धारण करते हुए) पितृदेव ! यह मुञ्ज अपने कर्त्तव्य को जानता है। आपकी आज्ञा धारण करना ही मेरा धर्म्म है।

श्रीहर्ष—मालवगण चाहते है, तुम मालव का शासन-सूत्र सँभालो। हम भी उनकी इस महती इच्छा को सफलीभूत देखना चाहेंगे। किन्तु वत्स स्मरण रखना, कर्त्तव्य प्रधान है और भावना गौण। भावना से कर्त्तव्य श्रेष्ठ है, भावना में प्रवाहित न हो जाना, यही आदेश है हमारा।

मुञ्जदेव—(स्वस्थतापूर्वक) आज्ञा पितृश्री ! मुञ्ज कर्त्तव्य-पालन मे कभी विमुख न होगा। महाशक्ति सदैव हमें प्रेरणा देगी।

श्रीहर्ष—प्रभु तुम्हे शक्ति प्रदान करे। मुञ्ज स्मरण रखना, सिन्धुल तुम्हारा अनुज है, उसे सहोदर ही ग्रहण करना।

मुञ्जदेव—पिताश्री, यह तो मेरा कर्त्तव्य रहा। भविष्य उसका साक्षी रहेगा। सिन्धुल पर आई आपत्ति उसकी आपत्ति न होगी, मुञ्ज उससे द्वन्द्व लेगा।

श्रीहर्ष—मुञ्ज, हमें तुम्हारे व्यक्तित्व पर अभिमान है। हमें विश्वास है, तुम्हारे स्वस्थ रक्त में, भ्रातृ-भावना में दूषित कीटाणु प्रवेश न पा सकेंगे। वत्स! भावी कल्पना होती ही ऐसी है। रक्त निर्दोष होने के कारण उसमे द्वन्द्व शक्ति प्रबल और अपरिमेय हो जाती है।

मुञ्जदेव—पितृदेव! मानव के सम्मुख परिस्थितियाँ बलवती होती है। मानव परिस्थितियो की दासत्व-शृंखला में कभी-कभी ऐसा आबद्ध हो जाता है कि उससे उसका निस्तरण दुष्कर प्रतीत होने लगता है।

श्रीहर्ष—उसमें न नुनच क्या हो सकता है? समय स्वय बलवान् हो जाता है, किन्तु फिर भी मानव-धर्म्म अपने पद से विमुख हो उठता है तो परिस्थितियाँ उसे लोक-लाज मे सरक्षित नही कर पातीं। उन पर विजय प्राप्त करने वाले ही तो मानव महान् कहे गये है।

मुञ्जदेव—निस्सन्देह पितृदेव! मानव का जागृत रूप तो यही है। अविकार-लिप्सा, माया-मोह भी तो इस जागरूक भावना एव कर्त्तव्य के प्रति विद्रोह कर बैठते है।

श्रीहर्ष—इन्ही दुर्विकारो से द्वन्द्व लेना वीरत्व है मुञ्ज, अन्यथा वीरता और कायरता में भेद ही क्या रहता?

मुञ्जदेव—पितृदेव, मैं चाहता हूँ कि सिन्धुल को अभी से उसका भाग निश्चित कर दें।

श्रीहर्ष—छि, छि, वत्स! इस राज्य-विभाजन-प्रणाली पर तुम्हारा ध्यान कैसे पहुँचा! यह तो नितान्त हेय है। एक शरीर के दो भाग कैसे किये जा सकते है? फिर तो उनमें से एक

भी जीवन पा सकेगा, सन्दिग्ध ही है। इस घातक प्रथा की कल्पना मात्र से ही हमारा तो अणु-अणु विचलित हो उठा है। यदि इस घातक प्रणाली का अनुसरण किया जाने लगा तो यह साम्राज्य-विभाजन नगर, उप-नगर और अन्ततो-गत्वा एक-एक गृह तक पहुँच सकता है। पुन इस सत्ता का अस्तित्व ही क्या शेप रह जायगा, विचारणीय है वत्स !

मुञ्ज देव– क्षमा करें पितृदेव। मेरा अभिमत यह नही था। यह मेरा अविवेक कह उठा था।

श्रीहर्ष—मुञ्ज, विवेक मानव को दैव की सर्वोत्कृष्ट देन है, उसे विश्रृंखल अश्व की भाँति ही नियन्त्रित रखना युक्ति-सगत है। जहाँ विवेक ने शिथिलता पाई नही कि मानव मानवीय गुणो से शून्य हुआ नहीं।

मुञ्जदेव—पितृदेव, यह राज्याधिकार-परिवर्त्तन सिन्धुल के पक्ष में कर दिया जाय तो उपयुक्त होगा। मैं सिन्धुल का दक्षिणाग रह-कर उन्हे शासन-सूत्र में सहयोग देता रहूँगा।

श्रीहर्ष—यह तुम्हारा भ्रम है, मिथ्या भ्रम ! वत्स, हम तो तुम्हे ही इसके सर्वथा उपयुक्त पाते हैं। तुम अनुभव-सिद्ध हो। युवराज तुम्हे ही होना है। पुनश्च हमारे समक्ष तो मुञ्ज और सिन्धुल दोनो एक ही हैं। सिन्धुल की माता भी तुम्हारे प्रति कम मातृत्व नही रखती। किन्तु मुञ्ज ! स्मरण रखो, तुम्हे कर्म-पथ प्रशस्त करना है। मालव मे तुम जन-प्रिय हो, पुनश्च अब तुम्हें हमारे सहयोग से राजनीति-पटुता प्राप्त करनी चाहिये।

मुञ्जदेव—जैसी आज्ञा पिताश्री !

स्तु, वत्स, आज के महान् योग में तुम्हारा मार्ग प्रशस्त होगा। समस्त मालव हर्षातिरेक से तरंगित हो उठा है। पुर-जन, परि-जन, राज-पुरुष, अमात्य प्रभृति कुमार के अभिनन्दन के हेतु एकत्रित हो रहे हैं। उनकी योग्य व्यवस्था का ध्यान रखना।

—पितृदेव, मुञ्ज अपने कर्त्तव्य-पथ से डिगेगा नहीं, यह विश्वास रखें।

-वत्स, तुम्हारा भविष्य उज्ज्वल हो, भगवान् शंकर तुम्हें शक्ति लाभ प्रदान करें।

[पट परिवर्तन]

तीसरा दृश्य

काल—विक्रम की ग्यारहवी शती का चतुर्थांश।

स्थान—तैलगण के राज-प्रासाद का मत्रणा-कक्ष।

(महामात्य, सेनाध्यक्ष तथा परिषद् वैठी है। मन्त्रणा-कक्ष अवन्तिका के मत्रणा-कक्ष से सज्जा में साधारण है।)

नेपथ्य में—"परमेश्वर, परमभट्टारक, सत्याश्रय-कुल-तिलक भुजबल चक्रवर्त्ती, रणरगभीम, आहवमल्ल, समस्त भुवनाश्रय, चालुक्याभरण, महाराजाधिराज, तैलगण नरेश, तैलपराज पधारते है।" सुनाई पड़ता है।

(परिषद्गण उठकर स्वागत करते हैं। तैलपराज, मृणालवती, युवराज सत्याश्रय अपने-अपने स्थान पर आकर वैठते है। तदनन्तर सव लोग वैठते है। मत्रणा आरम्भ होती है। समय-मध्यान्ह।)

तैलपराज—तैलगण के सामन्तो! हमारी चतुरगिणियो की वीरता अव तक चोल चेदि, पाचाल, गुजरात, राष्ट्रकूट प्रभृति कितने ही राष्ट्रो को तैलगण के अधीन वना चुकी है, किन्तु मालवपति हमारी कीर्ति-कौमुदी के लिए राहु वना हुआ है। हमारे निरन्तर प्रयत्नशील रहते हुए भी हम उसे पराभूत नही कर पाये है। एक वार पुन प्रयत्न करना होगा। उसे

दासत्व शृंखला में आबद्ध किये विना हम चक्रवर्ती-पद प्राप्त करने में सफल नही हो सकेंगे ।

मृणालवती—तैलपराज का कथन मिथ्या नही है। निरन्तर प्रयत्नशील रहने पर सफलता अवश्य ही उपलब्ध होती है । नैराश्यमय जीवन वीरों के लिये हेय है। प्रयत्नशील वनो, अनथक प्रयत्न करो, विजय-श्री तैलगरण के चरणो में आ गिरेगी ।

महामात्य—मुञ्ज हमारा प्रतिद्वन्द्वी है, वह प्रवल पराक्रमी भी है। अभी हमें शक्ति सगठित करनी चाहिये । तैलगरण-वाहिनियो को सुदृढ वनाकर ही इस दिशा में अग्रसर होना चाहिये ।

मृणालवती—परिषद्जनो ! महामात्य के विचार का हमें स्वागत करना चाहिये । किन्तु क्या आपकी धारणा में तैलगण-वाहिनियाँ इतनी कायर हो चुकी है कि मालव युद्ध की कल्पनामात्र मे ही वे सिहर उठती हैं । हमें यह ज्ञात है कि तैलगण वाहिनियो की विजय-वैजयन्ती चतुर्मुखी हो रही है। आज उसकी सुकीर्ति के गान गाये जा सकते हैं, किन्तु अवन्तिका हमारी कीर्ति में कालिमा वनी हुई है । वह तुम्हारे आह्वमल्ल को सम्राट्-पद नही लेने दे रही है। मुञ्ज उत्तरापथ में अपनी जय-जयकार करवा रहा है और हम हैं कि शान्त वैठे है। सम्भव है, कल दक्षिणापथ की ओर वह कूच कर वैठे ।

परिषद् १—यह अभिमत तो उचित ही है, किन्तु मालव-वाहिनियो के सम्मुख तैलगण चतुरगिणी टिकती ही नही है। हमें धैर्य और उत्साह से काम लेना होगा। यह सत्य है, क्षत्रिय के लिये अपमान मृत्युवत् है। हमें कट-कटकर मरना अभीष्ट है, किन्तु मुञ्ज के सम्मुख पराभूत रहना असह्य हो उठा है।

परिषद् २—तो कहिये ना, हम मुञ्ज से निपटेंगे, विजय-दुन्दुभि का घोष समस्त भू-मण्डल में प्रसारित करेंगे। मुञ्जदेव को वन्दी वनाकर अपने अपमान का प्रतिकार लेंगे।

मृणालवती—ऐसा ही होगा, तभी अवन्तिका का अभिमान चूर्ण होगा और तभी तैलगण अपना अखण्ड साम्राज्य स्थापित कर सकेगा, किन्तु इसके पूर्व हमें स्यूनदेश को अपनी ओर मिलाना चाहिये। हमारी राष्ट्रकूट-विजय के पश्चात् वह स्वतन्त्र होना चाह रहा है। शत्रु प्रवल हो चाहे दुर्वल, अन्ततः है तो शत्रु। माना कि वह हमसे विमुख न होगा।

तैलपराज—(आवेशपूर्वक) स्यून, स्यून! आज स्यून तो कल अवन्तिका। अन्तत हमें स्यून के प्रति भी अपनी नीति निर्धारित कर लेनी चाहिये। स्यून का यह अकाल वार्द्धक्य कुछ विशिष्ट अर्थ तो रखता ही है।

मृणालवती—तैलपराज! यह सत्य है, स्यून का अस्तित्व एव शक्ति अहर्निश तेजस्वी होते जा रहे हैं। स्यूनाधिप भिल्लमराज ने छोटे-छोटे मण्डलो को पद-दलित कर उन्हे श्री-हीन कर दिया है। स्यून की इस वृद्धि और दमन नीति की उपेक्षा की गई तो वह चुप न बैठ सकेगा, फिर मालव की सीमा भी तो स्यून से मिली हुई है। यदि हम स्यून के प्रति शिथिलता प्रदर्शित करते रहे तो सम्भव है अवन्तिका उसे अपने अधीन करले और तव मालव-वाहिनियाँ अपने सामरिक स्थल वहाँ स्थापित करलें। तव क्या होगा, विषय विचारणीय है। ऐसी विकट परिस्थिति

मे मालव तथा स्यून दोनो की सम्मिलित वाहिनियो से उलझना होगा। इस सम्मिलित शक्ति से सघर्ष लेने के लिये हमे पर्याप्त बल अभीष्ट होगा।

महामात्य—वहिन मृणालवती ने दूरदर्शिता की बात कही है। अग्नि-चिन्ह के यौवन पर आने से पूर्व ही जल वाञ्छनीय है।

सेनाध्यक्ष—तैलगणराज! हमारी समरवाहिनियो मे स्यून जूझ नही सकता। उसे तो अभी वर्षो साधना करनी होगी। हमारे सुभट स्व-शक्ति का रसास्वादन कराने में प्रवीण है, वे शत्रु-कीर्ति को धूलि-धूसरित करना जानते है।

मृणालवती—ठीक है, फिर भी उदासीन न रहना चाहिये। हमे स्यूनराज के पास सन्देश-वाहक भेज देना चाहिये। स्यून-वाहिनियां तैलगण की विजय-पताका फहराने में सहयोग दें। यदि भिल्लमराज स्यून-समर-वाहिनियो की सेवा तैलगण को समर्पित न करें तो स्यून पर आक्रमण कर स्यनाधिप को वन्दी बना लिया जाय।

परिषद् १—तैलगण की भाग्य-विधात्री के आदेश का पालन हो। हमारे सुभट सेनानी स्यून की सामरिक शक्ति को क्षीण करने को प्रस्तुत रहे।

तैलपराज—महामन्त्री! परिषद् का अभिमत सुना आपने! पालन हो!

महामन्त्री—आज्ञा देव!

[परिचारिका का प्रवेश]

प्रतिहारी—(नत मस्तक) देव, सीमा प्रदेश मे गुप्तचर आया है।

तैलपराज—उपस्थित हो।

[परिचारिका का प्रस्थान तथा गुप्तचर का प्रवेश]

गुप्तचर—देव की जय हो! स्यूनपुर में कुछ गुप्तचर पहुँचे हैं। वेश-भूषा से वे मालवी प्रकट होते हैं।

परिषद् १—(साश्चर्य) स्यून मे मालव गुप्तचर! जिसकी आशंका थी, वही क्रियात्मक हो रहा प्रतीत होता है।

मृणालवती—सैनिक! कुछ और भी कहना चाहते हो! उनकी शक्ति तथा कार्य-नीति का ज्ञान लगा सके?

गुप्तचर—हाँ, राजमाता! वे प्राय तैलगण तटवर्ती प्रदेश में भ्रमण करते रहते हैं। सम्भव है, यहाँ से वे तैलगण की गति-विधि पर दृष्टि रखें।

तैलपराज—सुना आप लोगो ने, भिल्लमराज आकाश छूने का उपक्रम कर रहे हैं।

मृणालवती—(सक्रोध) आकाश की ओर बढने वाले बाहु खण्डित कर दिये जायेंगे।

तैलपराज—शृगाल सिंह आवरण धारण करना चाहता है। क्या इस प्रकार वह अपना अस्तित्व छिपा सकेगा?

सत्याश्रय—तब हमें स्यून पर आक्रमण कर देना ही अभीष्ट है।

सेनाध्यक्ष—देव! युवराज का कथन उचित है। हमें अग्रणी होना चाहिये। आज्ञा दें देव!

तैलपराज—हाँ, युवराज सत्याश्रय भी इस युद्ध में अपनी निपुणता प्रदर्शित करेंगे।

सत्याश्रय—पितृदेव, अहोभाग्य ! तैलगण का युवराज समरागण में पीछे न रहेगा।

मृणालवती—सत्याश्रय ! ध्यान रहे, भिल्लमराज पर आघात न हो। उनकी रक्षा का भार तुम्हारे ऊपर है।

तैलपराज—(साश्चर्य) बहिन का अभिप्राय !

मृणालवती—केवल इतना ही, भिल्लमराज बन्दी बनाकर यहाँ लाए जाएँ।

[समस्त उपस्थित जन मृणालवती की ओर देखते हैं]

तैलपराज—अस्तु ! आज की परिषद् समाप्त हो।

[तैलपराज, मृणालवती आदि उठते हैं, तदनन्तर अन्य सभासद्गण उठकर अभिवादन करते हैं। धीरे-धीरे सब का प्रस्थान।]

[पट परिवर्तन]

चौथा दृश्य

काल—पूर्ववत् ।

स्थान—अवन्तिका-प्रासाद का अन्तराल ।

(मालवेन्द्र मुञ्जदेव अन्तराल के एक स्फटिक स्तम्भ का सहारा लिये हुए खड़े है। उनका एक हाथ कटि-प्रदेश पर है, उनकी निस्पृह दृष्टि यकायक निरभ्र नील आकाश में बिखरी हुई तारकावलि की ओर पहुँचती है। प्रतीत होता है, वे निशानाथ की षोडष कलाओ की कल्पना कर, उसकी कमनीय छटा का रसास्वादन ले रहे हैं। अकस्मात् उनकी दृष्टि वहाँ से हटकर मंगल नक्षत्र पर केन्द्रित होती है और सहसा उनकी मुख-मुद्रा में परिवर्तन होता है। ज्ञात होता है कोई गहन विचार-वीथि उनके स्वस्थ मानस को विकारी बना चुकी है। राज-महिषी चित्रागदा गर्भ-द्वार से प्रवेश करती है । उसकी दृष्टि मालवेन्द्र पर आकर स्थिर हो जाती है। वह मुञ्जदेव के मूक भावो का अध्ययन करने के निमित्त एक स्तम्भ से सटकर खड़ी हो जाती है । कुछ समय के बाद वह आगे बढकर मुञ्जदेव को सम्बोधित करती है, मालवेन्द्र की मुद्रा भग होती है । समय-रात्रि का द्वितीय पहर ।)

चित्रांगदा—(प्रवेश करती हुई) देव ! इस उद्विग्नता का हेतु ? रात्रि का द्वितीय पहर व्यतीत हो चला है ।

मुञ्जदेव—(सहसा चौंककर) देवी आ गई ! बहुत विलम्ब हुआ ।

चित्रागदा—हाँ, मै शिवालय से ही आ रही हूँ, कथा-प्रसंग में कुछ विलम्ब लगा। देव शयन-कक्ष में नही पधारे ? निद्रा से द्वन्द्व उचित नही देव ! पधारिये ।

मुञ्जदेव—देवी, हम कल्पना-व्यस्त थे, अवन्तिका निद्रा का आनन्द ले रही है, किन्तु सहसा हमारे हृदय में द्वंद्व उठ खडा हुआ और उस अन्तर्द्वन्द्व का मन्थन हमें अब तक व्यथित किये हुए है ।

चित्रागदा—देव, इस अन्तर्द्वन्द्व का मूल स्रोत क्या रहा ?

मुञ्जदेव—देवी उस अन्तर्वेदना से तटस्थ रहे, यही उचित है। हम मालव-महिषी को उसमे सम्मिलित करना इष्ट नही समझते ।

चित्रागदा—यह तो आपका भ्रम है देव ! राहु कुमुदिनी-नायक पर जब आक्रमण करता है तो उससे समस्त विश्व प्रभावान्वित हो उठता है। क्या इसमें सत्यता नही, देव !

मुञ्जदेव—यह युक्ति तो तर्क से सम्बन्वित है। इस तर्क में हमारी रुचि नही रही। यह तो विधि की विडम्बना है।

चित्रागदा—देव ! ऐसा ही है तो स्वस्थता धारण कीजिये ।

मुञ्जदेव—चित्रे ! युग-युग से आकाक्षाएँ चली आ रही है और मानव उनका भार उठाये हुए है। मानव मोह का सूत्र सँभाले हुए है। तब क्या हमारी साध मानवी नही है ?

चित्रागदा—मैं इसे अस्वीकार नही करती, देव। ज्ञात होता है, आज आप किसी गहन ग्रन्थि को खोलना चाहते है।

मुञ्जदेव—देवी ! ऐसी कोई वस्तु नही जिसे हम अप्राप्य समझते हो। सिद्धियाँ समस्त मालव-प्रागण में बिखर रही है। मालव-जन सुख-समृद्धि से निरन्तर अठखेलियाँ कर रहा है। पुनश्च हमें सन्तोप नही मिलता।

चित्रांगदा—देव ! आपकी प्रजा सब प्रकार से सुखी है, फिर हमारे पास ऐसी कौन-सी वस्तु का अभाव है जो देव को सन्तप्त किये हुए है। अतुलित सम्पदा है, कीर्ति है, सम्मान है। उज्जयिनी की धवल कीर्ति समस्त भारत में कौमुदी-महोत्सव मना चुकी है। देव अपनी प्रजा का पुत्रवत् पालन कर रहे है।

मुञ्जदेव—महादेवी का कथन उपयुक्त है, किन्तु फिर भी इतने से आत्म-सन्तोष तो नही हो पाता।

चित्रांगदा—इसका हेतु क्या रहा देव ?

मुञ्जदेव—चित्रे, हेतु क्या हो सकता है ! अवन्तिका का साधारण-से-साधारण प्रासाद शिशुओ की कल्लोलमयी किलकारियो से गुंजित हो रहा है, किन्तु यह राज-प्रासाद चिरकाल से उसके अभाव से चिन्तित है। स्वजात पुत्र पोपण में जो वात्सल्य स्नेह मिलता है वह अन्यत्र कहाँ है ? क्या देवी का मातृत्व लुप्त हो चुका है।

चित्रांगदा—देव, मै तो भोज में वह आत्मीयता अनुभव कर रही हूँ। उस पर अधिकार-भावना मान रही हूँ।

मुञ्जदेव—यथेप्ट, देवी। किन्तु जब तुम्हें यह अनुभव होने लगे कि उस अधिकार से महादेवी वञ्चित हो रही है, तब क्या उन्हे इससे पीड़ा न पहुँचेगी ?

चित्रांगदा—देव ऐसा तो नही है। मेरा मातृत्व जागृत है, किन्तु विधि का विधान कब टाले टला है।

[चित्रागदा के नेत्र सजल हो उठते हैं]

मुञ्जदेव—देवी के नेत्रो में नैराश्य-नीर झलकने लगा। देवी व्यथाकुरो को वढावा दे रही है। कातर न हो।

चित्रागदा—मातृत्व-भावना होती ही ऐसी है, और फिर आज शिवालय में कथा-प्रसग के अन्तर्गत अधिष्ठाता के मुख से भी तो सुना था।

मुञ्जदेव—अधिष्ठाता ने क्या कहा था देवी? हम भी सुनें।

चित्रागदा—यही, कि "पुत्रहीनस्य गतिर्नास्ति"।

मुञ्जदेव—यह तो शास्त्रीय विधान है। किन्तु देवी, भाग्य पर किसी का वश नहीं चलता। ईश्वर की इच्छा के विपरीत पल्लव तक नही हिलते।

चित्रागदा—ठीक है देव, किन्तु भाग्य सदा ही प्रतिकूल नही रहता। जीवन में कभी-न-कभी सुदिन भी आते हैं। यज्ञ-अनुष्ठान, साधु-सन्त सेवा, ईश्वर आराधना तथा धर्म-कार्यरत होने पर हमें सुफल अवश्य मिलेगा।

मुञ्जदेव—प्रभु हमारे अनुकूल हो, हम पितृ-ऋण से उऋण हो, ऐसा ही विधान करना चाहिए। विपरीत कल्पना से यह राज्य-भार हमें तो दु सह प्रतीत होने लगता है। यही हमारी पन्दराना है, और फिर सिन्धुल-पुत्र भोज का स्मरण करते ही हमें व्यथा और भी प्रताड़ित करने लगती है।

चित्रांगदा—क्या कह रहे है देव ? भोज भी तो अपना ही अश है । पितृव्य पुत्र पर क्या अपना स्वत्व नही है ? और फिर भोज का ममत्व भी तो कम नही, वहिन शशिप्रभा ने तो भोज को हमारे अक में छोड दिया है ।

मुञ्जदेव—देवी, यह ठीक है । सिन्धुलराज और वधू शशिप्रभा का यह कर्म स्तुत्य है, किन्तु क्या यह सम्भव है कि जननी का मोह भोज को हमारी ओर आकृष्ट रहने देगा । मेरा मन इसके विपरीत है । और फिर क्या तुम इससे सन्तुष्ट हो ?

चित्रांगदा—देव ! भोज से जो कुछ मै उपलब्ध कर सकी हूं उससे मै देख रही हूं, मै सुखी हूं । देव का प्रेम, भोज की मातृत्व भावना, प्रियजनो का स्नेह, सहयोग और देव-जनो की कृपा, जो मुझे उपलब्ध है, उसीसे सतुष्ट हूँ । मेरा जीवन सुखी है । इन्ही सत्पात्रो में मेरा जीवन केन्द्रित है । यही मेरी कामना है । पतिदेव, पुत्र भोज और स्वजन मेरे नेत्रो के सम्मुख रहे, इतने ही से मैं अपना जीवन धन्य समझती हूँ । (उद्विग्न होती हुई) और जब कभी इसके विपरीत कल्पना उठ खडी होती है तो अनुभव-सा होने लगता है कि चित्रागदा, तेरा जीवन अन्धकारणपूर्ण है, और तब मै उस अन्धकार-पूर्ण कल्पना का साकार रूप अनुभव करती हुई सिहर उठती हूं। सोचने लगती हूं, देव ! उस अभाव में चिता-शयन कर लूंगी । इस प्रकार अभाव की पूर्ति पूर्ण कर

मुञ्जदेव—देवी ! क्या कह उठी ? स्वस्थता धारण करो । गुरुजनो का आशीर्वाद और धर्मनिष्ठा हमारे सौभाग्य को साकार रूप देंगे ।

चित्रांगदा—यथेष्ट देव ! यही तो हमारी कामना है । हाँ तो देव, रात्रि बहुत निकल चुकी है ।

मुञ्जदेव—यथेष्ट देवी ! चलो तुम भी विश्राम करो ।

[दोनो का प्रस्थान]

[पट परिवर्तन]

पाँचवाँ दृश्य

काल—पूर्ववत् ।

स्थान—तैलगण के उत्तर-तटवर्ती प्रदेश पर स्थित शिविर ।

(शिविर के निकट ही गोदावरी का कल-कल निनाद प्रतिध्वनित हो रहा है । पश्चिमी भाग में पर्वतमाला की प्राचीर है । शिविर की सज्जा साधारण दृष्टिगोचर होती है । माधवी-लताओ के झुरमुट के समीप कुछ मच रखे हैं । तैलपराज, उनकी भगिनी मृणालदेवी, सत्याश्रय तथा अन्य सामन्तगण बैठे हैं । तलगण के सैनिक स्यूनाधिप भिल्लमराज को बन्दी बनाये हुए लाते हैं । भिल्लमराज की मुख-मुद्रा मलीन है । उनके दोनो हाथ पीछे मेरुदण्ड के निचले भाग पर स्थिर है । गति में गौरव है । समय मध्याह्न ।)

तैलपराज—(प्रसन्नता की मुद्रा में) आइये भिल्लमराज. तैलगण स्यून देश का स्वागत करता है । आसन ग्रहण कीजिये ।

भिल्लमराज—(गम्भीरता धारण करते हुए) तैलपराज ! यह उपहास शोभनीय नही । इस समय हम बन्दी है, आपके अभियुक्त हैं और तैलगण के शत्रु । यह आसन पराधीनता का प्रतीक है, इस पर बैठना हम अपना, अपने देश का अपमान समझते हे ।

तैलपराज—स्यूनराज उपहास न समझें । तैलगण वीरो का सम्मान करता आया है ।

भिल्लमराज—(आवेशपूर्ण मुद्रा में) तैलगण ने छलना का आश्रय लिया है। उसे वीरता प्रदर्शित करने का सुयोग तो कभी भाग्य से ही उपलब्ध हुआ होगा ?

मृणालवती—भिल्लमराज ! (सक्रोध) यह तुम क्या कह रहे हो ? स्यून का विगलित स्वरूप ! जानते हो, अहकार का प्रतिफल कटु रहा है। तैलगण ने सदैव तुम्हारे प्रति अपनत्व प्रदर्शित किया है, उसका प्रतिदान सद्भावनाओ से दिया जाना चाहिये।

भिल्लमराज—देवी मृणालवती ! आपका कथन यथेष्ट हो सकता है, किन्तु हमारा मानव इसे अस्वीकार करता है। तैलगण में यदि शक्ति-स्रोत था तो क्यो नही उसने स्यून का धर्म-युद्ध—वीर-युद्ध के लिए आह्वान किया। हमें ऐसी छलना में क्यो बाँधा गया ? क्या इसका हेतु हमें ज्ञात हो सकेगा ?

मृणालवती—भिल्लमराज, आप छलना किसे कह रहे हैं ? हम आपकी छलना की परिभाषा समझ न सके। क्या स्यून की समरवाहिनियो ने तैलगण-वाहिनयो से संघर्ष नहीं लिया ? तैलगण के वीर समरागण में कीर्ति-शेष नही हुए ? आपके कुशल हाथो ने रण-चातुर्य नही प्रदर्शित किया ? आपको ऐसा कौन-सा अवसर नही दिया गया जिसे आप युद्ध-भूमि में व्यवहार में न ला पाये ?

भिल्लमराज—युद्ध-भूमि में हमसे जो हो सका, उसका हमने आश्रय तो लिया, किन्तु तैलगण की टिड्डीदल समर-वाहिनियाँ क्या

स्यून-वाहिनियो के समकक्ष थी ? सहसा आक्रमण क्या वीर-युद्ध का द्योतक है ? हमारा स्यून अपनी एकाकी शाति में ही निमग्न था, वह तो अपनी शक्ति-सगठन मे ही रत था । उसे तैलगण से क्या लेना-देना था ? क्या इसका लेखा-जोखा आप हमें दे सकेंगे ? एक शान्ति-प्रिय देश की शान्ति खण्डित कर उसे युद्धाग्नि में घसीटा गया है, क्या यह दोष तैलगण अपने मस्तक पर ले सकेगा ? फिर परस्पर सम्बन्ध भी विस्मृत कर बैठे ? तैलगण और स्यून की महिषियाँ क्या एक ही पितृ-कुल की नही है ? यही सब होते हुए हमने यह कुविचार अपने मन-मस्तिष्क में पनपने न दिया कि तैलगण हमारा प्रतिद्वन्द्वी है ।

मृणालवती—तैलगण ने अपनी मित्रता स्यून मे चाही है ।

भिल्लमराज—धन्य है देवी, आपकी मित्रता-प्रदर्शन-प्रणाली को ! आपने मित्रता को दूपित किया है। तैलगण के सैनिको ने स्यून का सर्वनाश किया है, उसके भाग्य को भीपण भविष्य की ओर खदेडा है, उसके जनाकीर्ण पथो को शवो से ढक दिया है, रक्त-रजित भूमि हमें पुकार रही है, हम अपने प्रतिद्वन्द्वी से प्रतिकार लें ।

तैलपराज—भिल्लमराज ! यथेष्ट, ऐसा ही होगा । हम आपकी वीरता का स्वागत करते है । हम पुन आपको एक दूसरा अवसर देंगे । इसके अतिरिक्त जिन सैनिको ने युद्ध-नियमो का उल्लघन किया है, उनके लिये हमारा न्याय समर्थ है, भिल्लमराज !

भिल्लमराज—तैलपराज ! स्यूनदेश आपके इस विचार का स्वागत करता है। वीरत्व किसी एक की सम्पत्ति नही। वीर के लिए वीरत्व ही जीवन है और कायरता मृत्यु। स्यून अपनी स्वतन्त्रता के लिए आजीवन सघर्ष लेगा।

मृणालवती—भिल्लमराज ! तैलगण की अतुल शक्ति-पुञ्ज के समक्ष स्यून की स्थिति पर भी विचार किया है ? सोचिये भिल्लमराज सोचिये, गम्भीरतापूर्वक मनन कीजिये, कहाँ तैलगण-समरवाहिनियाँ और कहाँ स्यून की शक्ति ? क्या इसे आप अस्वीकार करते है ?

भिल्लमराज—यह तो हमें स्वीकार करना ही पडेगा। किन्तु हम अब तक यह न समझ पाये कि स्यून के स्वातन्त्र्य से तैलगण का क्या अनर्थ हो रहा था ? क्या आपको हमारी स्वतन्त्रता प्रिय नही है।

मृणालवती—भिल्लमराज ! हमें आपकी स्वतन्त्रता से ईर्ष्या नही, हमारे मन में मत्सर और विकार नही, किन्तु हमें भय है कि स्यून स्वतत्र रह सकेगा।

भिल्लमराज—यह कल्पना कैसे उठी, मृणालवती ?

मृणालवती—कल्पना नही है, भिल्लमराज ! स्यून मे मालवी गुप्त-चरो का जाल बिछता चला जा रहा है। क्या यह तैलगण के भावी कल के निर्माण मे बाधक न होगे ? तब क्या स्यून स्वातत्र्य-समीर का सेवन करता रह पायेगा ? फिर हमें भी तो चालुक्य-राज्य की चिन्ता है। शत्रु हमारे द्वार पर आ खडा होने का प्रयत्न कर रहा है। मालव-पति मुञ्ज हमारा प्रतिद्वन्द्वी है। वह

चालुक्य-साम्राज्य विस्तार करने में बाधक है। हमें उसकी कीर्ति-कौमुदी को हतप्रभ करना है। विश्वास कीजिये, हम स्यूनराज को दासत्व-शृंखला में आबद्ध देखना अभीष्ट नही समझते। हम तो उसकी स्वतन्त्रता के समर्थक है।

भिल्लमराज—यथेष्ट, मृणालवती ! किन्तु स्यूनदेश मालवगण के विरुद्ध अपने शस्त्रास्त्र न उठा सकेगा। हमारा गौरव उन्नत है और वह स्वतन्त्र ही रहना जानता है। अवन्तिका के प्रति हमारी कोई दुर्भावनाएँ नही है, पुन. मालवेन्द्र ने जहाँ अनेक राज्यो को पद-दलित किया है, वहाँ उन्होंने जन-कल्याणकारी मार्ग का ही अवलम्बन किया है। साम्राज्य-लिप्सा की प्रतिद्वन्द्विता मालव और तैलगण दोनो किये हुए है। एक केवल राज्य-विस्तार का प्रतीक है तो दूसरा भारतीय सस्कृति का उन्नायक। जहाँ तैलगण धन-सचय के हेतु अनन्य राष्ट्रो की शक्ति का उन्मूलक है, वहाँ मालव विधायक है। उसके विजित प्रागणो मे गण-अधिनायकत्व का स्वरूप विद्यमान है। उसने अनेक दरिद्रो के दारिद्र्य का नष्ट कर उन्हें समर्थ बनाया है।

तैलपराज—स्यूनराज, (सक्रोध) स्मरण रहे आप तैलगण की समरवाहिनियो की रक्षा में है। हमारे घर में ही शत्रु-स्तुति हो रही है। भूलें नही, आप वन्दी है, तैलगण-वाहिनियाँ स्यून के अवशेष ध्वस करने की क्षमता रखती है।

भिल्लमराज—चालुक्यराज ! इसे हम भूल नहीं सकते। हमारी परवशता से आप विनोद करना सीखे। स्यूनचन्द्रदेव की आत्मा हमारी परवशता से कराह उठी है। पितामह की थाती हम सुरक्षित न रख पाये। यह सत्य हमसे छिपा नही है।

मृणालवती—भिल्लमराज, भूल जाइये इन बीती हुई घटनाओं को। गडी हुई ईंटें उखाडने से कोई प्रयोजन सिद्ध न होगा। आपको अपनी वीरता पर गर्व है, हम इसे अपना गौरव समझते है, किन्तु यह सब अब तैलगण के लिए होगा। तैलगण को भी आप अपना घर समझ सकते है। तैलगण-वाहिनियाँ आपके अधीन होगी। आपको परिषद् में प्रमुख पद मिलेगा।

भिल्लमराज—देवी मृणालवती, हम इस रहस्य को समझ रहे है। इस सम्मान से आप हमें क्रय करना चाहती है। भिल्लम की आत्मा को पतन-पथ की ओर ले जाना चाहती है। क्षमा करें देवी। इस सौभाग्य को हम धारण करना उचित नही समझते। स्यूनदेश का गौरव ! (आवेश-पूर्वक) हमें मृत्यु प्रिय है, पराधीनता इष्ट नही, वह तो स्वप्न में भी कटु प्रतीत होती है, मृणालवती।

तैलपराज— तब आप चाहते क्या है? आपकी माँग क्या है? हम सुनें।

भिल्लमराज—हम आपसे क्या माँगे? यह हमारी परम्परा के प्रति-कूल है। हमारे कुल के लिये अशोभन है।

मृणालवती—यह भ्रम है, भूल है, भिल्लमराज ! आपके पूर्वज भी राष्ट्रकूट-नरेशों के महासामन्त रहे है। उन्होंने अपनी

सेवाएँ राष्ट्रकूट-नरेशो को प्रदान की थी। राष्ट्रकूट पराभव के उपरात ही वे स्यूनदेश मे आकर रहने लगे थे। वे राष्ट्रकूट नरेशो की कीर्ति प्रसारित करने मे सहयोग देते रहे हैं। हमारी उदारता ने ही उन्हे अपनी अधीनता में न रखा। वे भी तो तैलगण को अपनी सेवाएँ समर्पित करने को उद्यत थे, फिर अब नवीनता क्या है ?

भिल्लमराज—यह ठीक है, देवी मृणालवती ! हमारे पूर्वज राष्ट्रकूट-नरेशो के लिए प्राचीर का काम करते रहे है और प्रतिदानस्वरूप उन नरेशो ने हमारी शक्ति की सराहना की, अपनत्व दिया। उन्होने हमारे पूर्वजो का पराभव न माना, उन्हे अपना दक्षिणाग स्वीकार किया, किन्तु इससे क्या ? हमें भी तो स्वच्छन्द वायु मे श्वास लेना है। हम भी अपना अस्तित्व चाहते है। अपने पूर्वजो की कीर्ति स्थिर रखना चाहते है , और यह तभी सम्भव हो सकता है जब हम अपने देश के स्वय भाग्य-विधायक रहे। हमारे देश की नीति में किसी बाह्य-शक्ति का प्रभाव न हो। क्या तैलगण अपनी नीति से हमें अपनी ओर आकर्षित करने के लोभ का सवरण कर सकेगा ?

तैलपराज—साधु, भिल्लमराज साधु ! हम आपके विचारो का स्वागत करते हैं। स्यूनदेश की नीति हमें इष्ट प्रतीत हुई। आप तैलगण के महासामन्त-पद को शोभन करेंगे। वहाँ के राज्य-सचालन से हमारा कोई प्रयोजन

न होगा। आपकी वाहिनियाँ ही तैलगण के अधीन रहेगी, और फिर आप तो समस्त वाहिनियों के सचालक होगे।

भिल्लमराज—देवी मृणालवती, सुना आपने तैलपराज का कथन ?

मृणालवती—सुना ही नही, मैं तो उसका समर्थन भी करती हूँ। भिल्लमराज ! आज मै यह भी अनुभव कर रही हूँ कि तैलपराज के अतिरिक्त स्यूनदेश मे भी एक मृणाल का भ्राता है। दोनो भ्राता मिलकर दोनो देशो की कीर्ति-कौमुदी को बढावें।

भिल्लमराज—मृणालवती ! आपकी कूट-चातुरी और वाक्-पटुता ने हमें कर्तव्य-विमूढ बना दिया है। आपकी भावनाओ ने पगु वना दिया है। भाई-बहिन की इस कल्याणमयी भावना का हम स्वागत करते हैं, किन्तु एतदेय विषय गम्भीर विचार पर ही आधारित है। इस दिशा में हम अपना निर्णय दें, इसके लिये हमें कुछ अवधि चाहिये।

तैलपराज—हाँ, हाँ, भिल्लमराज, आप स्वतन्त्र है। स्वतन्त्रतापूर्वक आप विचार करें। महामात्य, स्यूनराज की निवास-व्यवस्था स्वतन्त्र हो। वे और उनका समस्त परिवार तैलगण का अतिथि रहे।

[तैलपराज उठकर प्रस्थान करते है, उनके पश्चात् अन्य सभी उठते है।]

[पट परिवर्तन]

छठा दृश्य

काल—पूर्ववत् ।

स्थान—उज्जयिनी के राज-प्रासाद के अन्त प्रकोष्ठ का एक सुसज्जित कक्ष ।

(स्वर्ण-रजत धातु निर्मित पर्यंकासन पर मुञ्जदेव पौढे हुए है । उनके निकट एक आसन पर चित्रागदा बैठी है । कक्ष विशेष समृद्ध एव कला-प्रसाधनो से सजा हुआ है। उसकी भित्तियो पर परमारवशी नरेशो के चित्र अकित है। वातायन तथा झरोखो का निर्माण ललित कला का साक्षात् प्रतीक है। यत्र-तत्र बैठने के निमित्त कुछ आसन सुव्यवस्थित ढग से रखे है । निकट ही सुसज्जित घडियाल रखा है । मालवेन्द्र मुञ्जदेव विचारमग्न है। उनकी नेत्रावलि कुछ खोज-सी रही है। कभी श्रीहर्ष, कभी सिधुलराज तो कभी भोज के चित्र पर निरन्तर आती-जाती है । सहसा उनकी जिज्ञासु दृष्टि भोज के चित्र पर ही आकर स्थिर हो जाती है। समय . सूर्यास्त से पूर्व ।)

चित्रांगदा—देव, क्या सोच रहे है ? देख रही हूँ आजकल आपका मन कुछ अस्वस्थ-सा रहता है ।

मुञ्जदेव—देवी, भोज अब वयस्क हो चला है। उसका वयस्क होना भीषण भविष्य का द्योतक है। मिथुलराज से हम कितनी ही वार कह चुके है कि वह हमें शासन-सूत्र में योग दें, किन्तु वे तो निस्पृह ही रहे। उन्हे आमोद-प्रमोद से अवकाश ही कहाँ ? उन्हे तो इसी में आनन्द मिलता है और इतने ही से वे तुप्ट प्रतीत होते हैं। सम्भव है, भोज स्वत्वाधिकार प्रकट करे। तव क्या यह निश्चित है कि मालव में शान्ति स्थिर रह सकेगी ?

चित्रागदा—देव !

मुञ्जदेव—देवी ! राज्य-सत्ता और अधिकार-लिप्साएँ है ही ऐसी वस्तुएँ कि विवेकशीलो का विवेक शून्य होने लगता है, और फिर उस विवेक-शून्यता के परिणामस्वरूप अनेक अमगल हो उठते है। राष्ट्र-के-राष्ट्र इसी लिप्सा के कारण अन्तर्हित हो चुके है। मनुष्य की इच्छा वलवती हुई नही कि वहाँ अकल्याणकारी मार्गो का प्रादुर्भाव होने लगता है। मानव-जीवन में इच्छा क्या है ? मन का दूपण दूर कर, यदि निर्दोष मन से विचार किया जाय, तो कहना होगा कि जीवन को कलुषित वनाने वाली यही इच्छा है। मानव में जब इच्छा जागृत हो जाती है तो वह मानवीय नियमो का उल्लघन कर वैठता है। मानव इच्छा में सलिप्त होकर अपने सृजनहार को भी विस्मृत कर उसके प्रति विद्रोही हो जाता है। (भावावेश में) ऐ, मानव महान् ! तुझमें तो सत्, चित् और आनन्द विद्यमान है। इन दैवी

गुणों को यदि तू खो बैठा तब भी तू क्या मानव ही रह पायेगा ?

[मुञ्जदेव उठकर घडियाल पर प्रहार करते हैं। चितामय आवेशमें इधर-उधर भ्रमण करने लगते है।]

[परिचारिका का प्रवेश, अभिवादन के पश्चात्।]

परिचारिका—(नत मस्तक) देव आज्ञा !

मुञ्जदेव—भैरवी ! रुद्रादित्य अपने विश्राम-कक्ष में होगे ?

भैरवी— हाँ देव, कुछ समय पूर्व ही बाहर से पधारे है।

मुञ्जदेव—उन्हे आने के लिये कहो।

भैरवी—(नत मस्तक) आज्ञा देव !

[प्रस्थान]

मुञ्जदेव—(भोज के चित्र की ओर मुखाकृति करके) भोज! अब इसे स्पष्ट कर लेना ही उपयुक्त होगा ! आज सिंधुल तो कल भोज। हो सकता है भोज ने शक्ति संचित कर ली तो एक दिन मालव में उथल-पुथल मच जायगी। शान्ति का स्थान क्राति ले लेगी और तब, सम्भव है, पारस्परिक विद्रोह—गृह-कलह आरम्भ हो जाय।

[परिचारिका का प्रवेश]

भैरवी—(नत मस्तक) देव, महामात्य पधार रहे है।

[अभिवादन करती हुई पीछे हटती है। राजमहिषी भी उठकर चल देती है। रुद्रादित्य का प्रवेश।]

मुञ्जदेव—पधारिये महामात्य । आज आप नगर-भ्रमण के लिए गये थे ?

रुद्रादित्य—हां, देव ! नगर-भ्रमण तो आश्रयमात्र था । कुछ समय से सुन रहा था, नगर में कुछ अवाञ्छित व्यक्ति अपना सगठन कर रहे हैं ।

मुञ्जदेव—(साश्चर्य) अवाञ्छित व्यक्ति ? कौन हैं वे ?

रुद्रादित्य—और कौन हो सकते हैं देव ! नगर का प्रमुख श्रेष्ठि लक्ष्मीधर । राज्य-विरोधी तत्व धनिक-वर्ग में ही पाये जाते हैं ।

मुञ्जदेव—उनका अभिमत क्या है ? क्या हमारी शासन-व्यवस्था अप्रिय है उन्हे ?

रुद्रादित्य—ऐसा तो नही है देव ! उन लोगो का कुचक्र चल रहा है । कुछ लोग चाहते है सिंधुलराज वृहत् अवन्तिका का शासन-सूत्र अपने हाथ में लें ।

मुञ्जदेव—ऐसे और कौन व्यक्ति हैं जो ऐसी कामना कर रहे हैं ? अकेले लक्ष्मीधर का तो यह साहस प्रतीत नही होता । आजकल सिंधुलराज भी यहाँ नही हैं, फिर यह षड्यन्त्र चल किस आधार पर रहा है ?

रुद्रादित्य—कृपानाथ ! लक्ष्मीधर तो उनका प्रमुख है । एक विस्तृत सगठन है, उसमें सहस्रो व्यक्ति हैं । नामावलि प्रस्तुत करने का अवसर तो यहां उचित नही प्रतीत होता । इस षडयन्त्र का आधार भी वे चालुक्य तैलपराज को ही मान रहे हैं । देव की कृपा की टीका सर्वत्र होती

रहती है। उन लोगों की धारणा है कि तैलप देव की कृपा का अधिकारी नहीं है। वह अवन्तिका की शान्ति के लिए अवाञ्छनीय हो रहा है। देव ने उसे कई वार अभय दिया है, तैलप उसका दुरुपयोग करता रहा है। व्यापारी वर्ग अपने क्षेत्र में शान्ति का इच्छुक रहा है। वह हमारे प्रशासित क्षेत्र में घुसकर शान्तिमय वातावरण को अशान्तिमय बनाकर चला जाता है। उसे उचित दण्ड देव नहीं दे रहे हैं। नागरिकों की धारणा है, सिन्धुलराज, सम्भव है, अपना दृष्टिकोण कठोर रखकर उज्जयिनी की विजय-पताका तैलगण में भी प्रसारित कर सकें। इस प्रकार उन लोगों की दृष्टि में, अवन्तिका के व्यापार-क्षेत्र में वृद्धि भी हो सकेगी।

मुञ्जदेव—महामात्य! यह कुचक्र, सम्भव है, कल अपना रूप बदल ले।

रुद्रादित्य—पृथ्वीवल्लभ, असम्भव क्या है? सिन्धुलराज उनके कुचक्र में फँस जायें। पुनः भोजराज भी तो विद्याध्ययन पूर्ण कर अवन्तिका आयेंगे।

मुञ्जदेव—रुद्रादित्य! सुनिये, हमने सोचा है कि सिन्धुलराज को अवन्तिका की बागडोर सौंपकर हम दक्षिणापथ की विजय-यात्रा के लिए कूच कर दें: और तब तक वहाँ से न लौटें जब तक समस्त दक्षिणदेशवासी नरेश मालव-के नीचे आकर शरणागत नहीं होते।

रुद्रादित्य—देव का कथन नीति-सिद्धान्त का प्रतीक तो नहीं है; हाँ, उसका कुछ अंश मेरे समर्थन का पात्र हो सकता है

दिग्विजय अवश्य करें देव, किन्तु अवन्तिका से श्रीमान् का लम्बे समय तक अनुपस्थित रहना राष्ट्रहित के लिए कल्याणकारी नही हो सकता । फिर देव कल्पना करें, सिन्धुलराज शासन-सूत्र सँभाल सकेंगे ? और यदि सँभाल भी सके तो क्या वे उसे देव के लिये सुरक्षित रख सकेंगे ? सन्दिग्ध ही है ।

मुञ्जदेव—महासचिव ऐसी अमान्य धारणा क्यो ? दशरथनन्दन भरत का दृष्टान्त प्रत्यक्ष है । राज्याधिकार अपहरण उन्होंने कब किया ? वे तो श्रीराम के प्रतिनिधि बनकर ही अयोध्या की-शासन-व्यवस्था सँभाले रहे । सभव क्या नही है महामात्य ?

रुद्रादित्य—क्षमा करें देव, श्रीराम की आदर्श मर्यादा और श्रीभरत का भ्रातृत्व आज कहाँ है ? वह तो बीते युग की एक कहानी है ।

मुञ्जदेव—महमात्य रुद्रादित्य ! विधान की स्याही का एक ही विन्दु भाग्य-लेख को अस्पष्ट कर देता है । विधि के अंक हमारी प्रगति में यदि बाधक है तो उनसे सघर्ष कहाँ तक सभव होगा ? फिर राजकुमार भोज के विधि अक प्रवल ही कहे जा रहे है, राज-ज्योतिषी के कथन को समर्थन मिल रहा है । वे अवश्य शासन-सूत्र सँभालेंगे । मालव को गौरवान्वित करेंगे वे ।

रुद्रादित्य—देव, संकल्प-विकल्प की उलझन में फँसते ही जा रहे है । मन में स्वस्थता धारण कीजिये । भगवान् शकर मगल करेंगे ।

मुञ्जदेव—महामात्य ! मन ममता में द्रवित होता जा रहा है। ज्यो-ज्यो उसे शमन करने का उपक्रम करना चाहता हूँ, त्यो-त्यो उसमें और भी फँसता जारहा हूँ। (वातायन से बाहर एक वृक्ष-पिण्ड की ओर संकेत करके) देख रहे हो, वह मकडी का जाल ! (रुद्रादित्य उस ओर दृष्टि करते हैं) मक्षिका फँस चुकी है। वह उसमें से निकलने का प्रयास कर रही है, किन्तु उसका निष्क्रमण जटिल ही होता जा रहा है। हमारी इच्छा है कि मालव-पताका दिग्दिगंत में फैले, किन्तु, भविष्य के गर्भ में क्या है, कौन कह सकता है ?

रुद्रादित्य—देव, क्षमा करें। इच्छा का दमन करना मेरी सम्मति मे श्रेयस्कर प्रतीत नही होता। यह निर्विवाद है कि इच्छा का उदय होने पर वह प्रवल ही होगी। इच्छा का हनन क्या मानव-जीवन के सिद्धान्तों मे समष्टि पाता है ? मानव-जन्म कर्म के निमित्त ही तो है, तब उन कर्म-साधनो का हनन क्या विधि-विधान के प्रतिकूल नही होगा ? देव, मुझे श्रीमान् का बाल-साथी होने का सौभाग्य रहा है। मैं तो भवदीय कीर्ति और उन्नति का ही आकांक्षी हूँ।

रुद्रादित्य ! आपका कथन उचित होते हुए भी हम स्वधारणा परिवर्तन करने मे असमर्थता पा रहे हैं। हमारी धारणा में तो एक क्रांति का ादुर्भाव हो रहा है। महामात्य ! घोषित करें, इस अवन्तिका का युवराज-पद राजकुमार भोजराज के लिये सुरक्षित रहेगा।

रुद्रादित्य—आज्ञा श्रीमान् ।

[रुद्रादित्य का प्रस्थान]

[मुञ्जदेव उठकर श्रीहर्ष की प्रतिमा के समक्ष खडे होकर]

मुञ्जदेव—पितृश्री, मुञ्ज आपके प्रति वचन-बद्ध है। भोज सिन्धुलराज का पुत्र ही तो है। यदि चित्रांगदा के पुत्र हुआ भी तो क्या ? आपके आदेश के अर्थ को समझता हूँ । मालव के विशाल राज्य का अधिपति तो भोज को ही होना है । भोज सिन्धुलराज का पुत्र होते हुए भी मुञ्ज की ममता उसी में अन्तर्हित है । (ममत्व प्रदर्शित करते हुए) भोज ! वत्स भोज !!

[पट परिवर्तन]

सातवाँ दृश्य

काल—पूर्ववत् !

स्थान—मालव-महिषी के राज-प्रासाद का एक सुसज्जित कक्ष।

(महिषी की एक अन्तरग परिचारिका कुछ सामग्री जुटाने में व्यस्त दिखाई देती है। चित्रागदा के हाथ में तूलिका है। सम्भवत: वह किसी चित्राकन की तैयारी में है। समीप स्फटिक चित्रफलक रखा है। उस पर कुछ टेढी-सीधी धुँधली-सी रेखाएँ अकित हैं। परिचारिका रग-पात्र लाकर रखती है। चित्रागदा चित्रपट को आधार-स्तम्भ पर रखकर रगो का सम्मिश्रण कर तूलिका से उन रेखाओ में रग भरती है। कुछ समय में चित्र में सजीवता आने लगती है। उन दोनो का ध्यान चित्र में अवस्थित है। समय:मध्यान्ह के पश्चात्।)

[एक द्वार से मालवेन्द्र मुञ्जदेव आकर उनके पीछे खडे हो चित्र देखने में तल्लीन हो जाते हैं। कुछ समय पश्चात् हठात् उनके मुख से निकल पडता है।]

मुञ्जदेव—सुन्दर, अतिशय सुन्दर! महादेवी के अकपाश में नवजात शिशु का होना कितना सुहावना लग रहा है।

[चित्रागदा तथा परिचारिका आश्चर्य-विमोर हो जाती है। चित्रागदा चित्र पर अपना दुकूल डाल उसे ढकती है। दोनो नारी-सुलभ लज्जा से अपने सुकोमल गात

के इतस्नत हुए परिधान को सँभालती है। चित्रागदा चित्र को परिचारिका की ओर बढाकर उसे ले जाने का सकेत करती है। मुञ्जदेव रोकते हैं। परिचारिका रुकने का उपक्रम करती है। चित्रागदा पुन जाने का आदेश देती है, वह वहाँ से भाग जाती है। मुञ्जदेव मृदु हास्य हँसते हैं। महिषी लजाती है।]

मुञ्जदेव—महादेवी की तूलिका ने शिशु को जन्म दे दिया है। कितना सुन्दर बालक था। जी चाहता है उसे निरन्तर देखता ही रहूँ। कितनी सुन्दर छवि !

चित्रांगदा—(सहास्य) और श्रीमान् ने क्या दिया ? निरन्तर युद्ध-विग्रह में ही रत रहने वाले मानव क्या समझें, इस सुकुमारता को।

मुञ्जदेव—यह सुकुमारता हमें अप्रिय नही है महादेवी ! इस सुकुमारता के अभाव में हम भी पीडित चले आ रहे है। कभी न कभी यह सुदिन हमारे भाग्य में भी होगा। हम निराश नही हुए हैं, आशा बलवती है। हाँ, महादेवी सुनिये नवीन सवाद।

चित्रागदा—क्या समाचार है देव ? यही न कि कुँवरजी आ रहे है।

मुञ्जदेव—(साश्चर्य) यह देवी को कैसे ज्ञात हुआ ?

चित्रागदा—(सलज्ज) हमारा मातृत्व जो जगा है।

मुञ्जदेव—यथेष्ट, यह तो इसी चित्र से प्रमाणित हो चुका है।

चित्रांगदा—हँसी छोड़िये देव। कहिये न, कब तक पहुँच रहे हैं कुँवर भोजराज। (प्रसन्नतापूर्वक) हम उत्कण्ठित हो उठे हैं उनके स्वागत को। विद्याध्यन पूर्ण कर चुके है ?

मुञ्जदेव—हाँ, अब देखना अपने भोज को। शास्त्र, काव्य, राजनीति सभी विद्यायो में वे पारगत हुआ है।

चित्रांगदा—(प्रसन्नता प्रदर्शित करती हुई, ममता में भरकर) मेरा भोज, वत्स। भोज आ रहे हैं, कितने दिनो पश्चात्। कितनी सुखद है यह वेला।

[परिचारिका का प्रवेश]

परिचारिका—(नत मस्तक) देव, महामात्य पधार रहे हैं।

मुञ्जदेव—(साश्चर्य) महामात्य आ रहे है।

चित्रांगदा—देव, कुछ आवश्यक मन्त्रणा करनी होगी।

मुञ्जदेव—यथेष्ट।

[नत मस्तक परिचारिका जिस ओर से आती है उसी ओर चली जाती है। राजमहिषी एक ओर चली जाती है। कुछ समय पश्चात् वही परिचारिका महामात्य के साथ आती है।]

रुद्रादित्य—परमार-कुल-शिरोमणि मुञ्जदेव की जय हुई।

मुञ्जदेव—आइये बैठिये। (एक आसन की ओर सकेत करके) महामात्य बैठिये।

[उनके निकटवर्ती आसन पर महामात्य रुद्रादित्य बैठते हुए]

रुद्रादित्य—देव, क्षमा करें, इस समय विशेष कारवणश ही उपस्थित हुआ हूँ।

मुञ्जदेव—हाँ, हाँ, कहिये न, महामात्य दूत भेज दिये न, राजकुमार को शीघ्र ले आवें। मार्ग में कोई असुविधा न हो, यह सब व्यवस्था कर दी गई होगी!

रुद्रादित्य—(मुख-मुद्रा के भाव परिवर्तित करते हुए) देव, व्यवस्था हो चुकी है। हाँ, श्रीमान् से निवेदन करना चाहता था कि मेरे आगमन का हेतु दूसरा ही है।

मुञ्जदेव—(खिन्नता प्रदर्शित करते हुए) इस स्वागत समारोह के अतिरिक्त भी इस समय आप कुछ अन्य विषयो पर मन्त्रणा चाहते हैं ?

रुद्रादित्य—हाँ, श्रीमान्, मैंने आते ही निवेदन किया था, पूर्व में कलचुरि पर अवन्तिका की ध्वजाएँ गगन-विहारिणी हो चुकी हैं। वहाँ अब किसी प्रकार की अराजकता नही रही। किन्तु दक्षिण की ओर से काली घटाएँ पुन आकर मालव पर आच्छादित होना चाहती हैं। तैलपराज ने पुनः अवन्तिका पर आक्रमण करने का बीड़ा उठाया है।

मुञ्जदेव—महामात्य के नेत्र कुशल हैं। आपसे अवन्तिका गौरवान्वित है। रुद्रादित्य सम्भवत यह उनका छठी बार आक्रमण है। हमें हर्ष हे। हम अपनी शक्ति से इस बार भी उन्हें खदेड़ देंगे। तैलगण के आघात अभी तो हरे हैं, क्या वे पिछली चोट को भूल गये, आश्चर्य।

रुद्रादित्य—देव, आश्चर्य का हेतु! तैलगण अपनी पराजय को जय में बदलना चाहता है और जब तक वह अपने ध्येय

में सफल नहीं होता उसकी अन्य राष्ट्र-विजय हतप्रभ ही बनी रहेगी। सुना है देव, स्यूनदेशाधिपति भिल्लमराज स्व-शक्ति तैलंगरण को समर्पित कर चुके हैं। उन्हे तैलगरण का महासामन्त-पद प्रदान किया गया है। वे भी अब की वार तैलपराज के साथ युद्धार्थ आ रहे हैं।

मुञ्जदेव—(साश्चर्य) भिल्लमराज तैलगरण के महासामन्त! आश्चर्य! स्यूनदेश को तो हमने सरक्षण का आश्वासन दिया था।

रुद्रादित्य—स्यूनदेश पर सहसा तैलगरण-आक्रमरण का यही तो कारण बना। भिल्लमराज मालव के प्रति ही अपनी श्रद्धा प्रदर्शित करते रहे है, किन्तु अब उनका क्षात्र-धर्म उन्हे विवश कर रहा है।

मुञ्जदेव—तथास्तु! महामात्य, हमें प्रसन्नता हुई। (आवेशपूर्वक) हमारी खड्ग-धाराएँ रक्त-पिपासु हों। उन्हे शीघ्र ही अपनी तृषा तृप्त करने का पुन. अवसर मिलेगा। राजकुमार भोज भी तो आ रहे है, उन्हे भी अपना रण-चातुर्य प्रदर्शित करने का सौभाग्य उपलब्ध होगा।

रुद्रादित्य—देव, क्षमा करे! मुझे कुछ अमगल प्रतीत होता है। भोज के प्रति आपका मोह निरन्तर वृद्धिगत ही होता जा रहा है। श्रीमान् अभय प्रदान करें तो कु निवेदनछ करू ?

मुञ्जदेव—महामात्य राज्य-सम्मान से गौरान्वित है, आपको कहने का अधिकार है। महामात्य कहें, हम स्वागत करेंगे।

रुद्रादित्य—देव, भोजराज को (कहते-कहते रुक जाना)

मुञ्जदेव—सन्देह का आविर्भाव न हो, महामात्य निश्शंक कहें।

रुद्रादित्य—श्रीमान् आज्ञा दें, भोजराज अवन्तिका मे प्रवेश

(पुनः रुक जाना)

मुञ्जदेव—हाँ, हाँ, (प्रसन्न होकर) भोज अवन्तिका आ तो रहे हैं।

रुद्रादित्य—किन्तु देव मेरा अभिमत श्रीमान् की इच्छा के प्रतिकूल है।

मुञ्जदेव—(साश्चर्य) हमारी इच्छा के प्रतिकूल? महामात्य क्या कहना चाहते हैं?

रुद्रादित्य—क्षमा करें श्रीमान्। मुझे तो इसी प्रतिकूलता में अवन्तिका का भविष्य समुज्ज्वल दृष्टिगोचर हो रहा है / जो औरों को कुचलकर स्व-पथ का निर्माण करते हैं, जीवन-रण में उन्ही महान् पुरुषों का सौभाग्य-चक्र बढ़ता है। देव दौर्बल्य का त्याग करें। यह अवनि वीर-भोग्या है। सत्ता के शतशः साथी होते हैं देव। कुटियाँ ढाकर ही विशाल प्रासाद निर्मित होते आये हैं।/

मुञ्जदेव—(आवेशपूर्वक) महामात्य, हम इस कुशाग्र बुद्धि के समर्थक हैं, किन्तु आप इस षड्यन्त्र में सफलीभूत नहीं हो सके। (सक्रोध) परमार-कुल-द्रोही वध्य हो।

[मुञ्जदेव उठकर घडियाल पर प्रहार कर इधर-उधर उद्विग्नता से घूमने लगते हैं। रुद्रादित्य स्तम्भित हो खड़े रह जाते हैं]

[द्रुतगति से परिचारिका का प्रवेश]

परिचारिका—(नत मस्तक) देव आज्ञा !

मुञ्जदेव—महासामन्त कहाँ है ? शीघ्र आवें।

[द्रुतगति से परिचारिका का प्रस्थान]

रुद्रादित्य—अहोभाग्य देव, यह नश्वर शरीर श्रीमान् के काम आवे। किन्तु रुद्रादित्य का स्मरण करना देव, श्रीमान् को प्रभु बनकर वसुन्धरा पर शासन करना है, जिन्हे दासत्व भावना में मरना अभीष्ट है, वे ही यहाँ मृत्यु का आह्वान करेंगे। वीर-भोग्या वसुन्धरा पर शासन करना श्रीमान् का जन्म-सिद्ध अधिकार है।

मुञ्जदेव—जन्म-सिद्ध अधिकार। (खिन्नता-मय हास्य) जन्म-सिद्ध अधिकार ! (सहसा उनके मस्तिष्क में मुज-वन-प्रदेश से उपलब्ध बालक, राजयोग के चिन्ह, सिन्धुल का अधिकार-अपहरण, अवन्तिकानाथ, मुञ्ज, पृथ्वीवल्लभ आदि अनेक कल्पनाएँ उठती हैं, मुख की मुद्रा खिन्न हो जाती है। उद्विग्नता बढने लगती है।)

रुद्रादित्य—पृथ्वीवल्लभ स्वस्थता धारण करें। मेरे कहने का हेतु यही है कि मालव महान् बने, परमार-कुल-शिरोमणि निश्शंक शासन करें। अवन्तिका में उठ रही विद्रोहाग्नि का शमन हो। भोजराज का यद्यपि

अवन्तिका में पदार्पण नही हुआ है, किन्तु अभी से चर्चाएँ उठ खडी हुई हैं—भोजराज अवन्तिकानाथ बनें। देव, क्षमा करें। इस विद्रोहाग्नि का उन्मूलन भोजराज की उपस्थिति में सम्भव न हो सकेगा।

मुञ्जदेव—(किंकर्त्तव्य विमूढ-सा) महमात्य, हम कायरता के वशीभूत हो चले हैं। सम्भव है कि आपका कथन सत्य सिद्ध हो। (आवेश में भोज का अवन्तिका-प्रदेश निषिद्ध (स्वर क्षीण होता हुआ) नही होगा। महामात्य, यह असम्भव है। हमें तो शत्रु से द्वंद्व लेना है, हम तो तैलगण-विजय के लिए प्रस्थान करेंगे। हम जानते हैं, महामात्य राज-भक्त हैं और उनकी यही भक्ति उन्हे प्रेरित कर रही है।

[महासामन्त का प्रवेश]

महासामन्त—मालवेन्द्र की जय हो (झुककर प्रणाम करता है)

मुञ्जदेव—महासामन्त! सुना है, तैलपराज अवन्तिका पर पुन आक्रमण करना चाहता है। हमारी वाहिनियाँ तत्पर रहें। हम किसी समय भी युद्ध-यात्रा के लिये प्रयाण कर सकें, ऐसी व्यवस्था होनी चाहिये।

महासामन्त—देव, हम सब प्रकार से प्रस्तुत हैं। महासाध्यपाल धनिक तथा महामात्य के आदेश से हम अवगत हो चुके हैं। केवल देव को मुद्रा अंकित करनी है उस पर।

मुञ्जदेव—(स्वस्थता धारण करते हुए) महामात्य! आपकी राष्ट्र-भक्ति और उसके प्रति सच्ची लगन स्तुत्य है। आप समय से पूर्व पाल बांधने में अग्रणी रहते आये हैं।

महामात्य—यह सब देव की कृपा है।

मुञ्जदेव—हम गौरवान्वित हुए। किन्तु भोजराज के स्वागतार्थ भी कुछ उठा न रखेंगे महामात्य।

महामात्य—यथेष्ट देव। भवदीय इच्छा पूर्ण होगी।

मुञ्जदेव—महासामन्त, विश्राम करें। महामात्य रुद्रादित्य! आर आप, हाँ आप भी।

[दोनो का प्रस्थान]

[पट परिवर्तन]

समूह से ध्वनित होता है, 'राजकुमार की जय हो', 'मार्ग स्पष्ट हो', 'मार्ग स्पष्ट हो', 'कुँवरजी पधारते हैं।' मालवेन्द्र तथा दोनो महिषियाँ उधर दृष्टि-निक्षेप करती हुई आनन्द-विभोर हो उठती हैं।]

[परिचारिका भैरवी का प्रवेश]

भैरवी—(नत मस्तक) देव, महामात्य आज्ञा चाहते है।

मुञ्जदेव—महादेवी सुना, महामात्य रुद्रादित्य आ रहे हैं।

[राजमहिषी चित्रागदा तथा शशिप्रभा अट्टालिका के एक प्रकोष्ठ की ओर चली जाती हैं। रुद्रादित्य का प्रवेश।]

रुद्रादित्य—देव, प्रणाम स्वीकार हो।

मुञ्जदेव—आइये रुद्रादित्य, आपकी व्यवस्था सराहनीय है। आयोजित स्वागत-सज्जा स्तुत्य है।

रुद्रादित्य—श्रीमान् तुष्ट हुए, अहोभाग्य! समाचार मिले हैं इस सुयोग में सम्मिलित होने भिल्लुराज भी सध्या-वेला तक पधार रहे हैं।

मुञ्जदेव—महामात्य, (आनन्दातिरेक में) सुन्दर, सचमुच सुन्दर! हम आपसे प्रसन्न हुए। कितना सुखद प्रसग रहा! आइये महामात्य, अवलोकन कीजिए अपने जन-पद-समूह के उल्लास को।

[रुद्रादित्य जन-समुदाय का विहगावलोकन करके]

रुद्रादित्य—देव आह्लादित हो रहे हैं, इससे बढ़कर मेरा क्या सौभाग्य हो सकता है।

मुञ्जदेव—महामात्य कुँवर भोज कब तक प्रासाद कक्ष में आ पायेंगे ? यदि विलम्ब न हो तो चलें, नीचे चलकर, स्वागत-दृश्य का अवलोकन करें।

रुद्रादित्य—हाँ, हाँ, अब अधिक प्रतीक्षा नही करनी होगी—देव। देख रहे हैं न, जन-समूह का स्वागत—भोज के प्रति उनकी सहृदयता।

मुञ्जदेव—परमार-कुल पर अगाध स्नेह उसका प्रतीक है। मालव-राज्य के लिये यह सौहार्द सुदृढ प्राचीर है महामात्य !

रुद्रादित्य—देव क्षमा करे, यही सुदृढ प्राचीरें डगमगा भी सकती है। एक साधारण-सा कम्प इनमें भीषण दरारें भी डाल सकता है।

मुञ्जदेव—(साश्चर्य) हम आपका अभिप्राय समझ न सके। मत्र स्पष्ट करें महामात्य।

रुद्रादित्य—देव अभय प्रदान करें।

मुञ्जदेव—तथास्तु।

रुद्रादित्य—जो जन-समूह का सौहार्द-समुद्र भोजराज के प्रति समुद्वेलित हो उठा है, उसमें श्रीमान् के लिये कितना अश शेष रह जायगा ? यही कल्पना कर मेरा मन सिहर उठता है। राजमहिषी चित्रागदा की कुक्ष से प्रसूत, हमारे सौभाग्य-सूर्य के लिए क्या यह सम्भाव्य हो सकता है देव ? (गम्भीरता धारण करते हुए) भोज और भावी शिशु ! भावी शिशु और भोज ! देव क्षमा करें, (मध्यम स्वर मे) इसी कल्पना ने मुझे झकझोर रखा है। मेरी विवशता को समझिये देव !

मुञ्जदेव—रुद्रादित्य ! हम अनुभव कर रहे है, जहा महामात्य हमारे हितैषी है, वहाँ हमारी शाति भग के दोष मे भी वचित नही रह सकते। अच्छा चलिये, भोज आने ही वाले है, हमारी अनुपस्थिति अनुचित रहेगी।

[दोनो अट्टालिका से उतरते है। उतरते-उतरते मालवेन्द्र का पैर फिसल जाता है। वे सहसा धरा-लुण्ठित हो जाते है। रुद्रादित्य सँभालने का प्रयत्न करते है। वे बडी कठिनता से उठकर खडे होते है किन्तु चलने में असमर्थता प्रकट करते है। रुद्रादित्य के ताल-घोष से कुछ परिचारिकाएँ आती है, मालवेन्द्र को स्कध का आश्रय देकर प्रासाद के अन्त -प्रकोष्ठ-स्थित पयङ्कासन तक ले जाती है। उन्हे उस पर पौढा देती है। प्रासाद मे सर्वत्र अव्यवस्था-सी खडी हो जाती है। परिचारिकाएँ महिषी को सवेदनात्मक समाचार देने दौड जाती है। समस्त प्रासाद में प्रत्येक के मुख से सुनाई देता है, 'देव अस्वस्थ हो गये,' 'देव अस्वस्थ हो गये।' वातावरण गम्भीरता का रूप धारण कर लेता है।]

रुद्रादित्य—देव ! अमगल। इस सुरम्य वेला मे भी अमगल प्रतिष्ठित हो गया।

मुञ्जदेव—(खिन्नतापूर्वक मुद्रा मे भी रुद्रादित्य की वाणी से उत्तप्त होते हुए) रुद्रादित्य, आपके सम्भाषण में दुगन्ध प्रतीत होती है (कराह उठते है)।

रुद्रादित्य—देव क्षमा करे, राजकुमार का अवन्तिका-प्रवेश हीन ग्रहो का सूचक है।

मुञ्जदेव—(स्वस्थ होते हुए गम्भीरतापूर्वक) रुद्रादित्य, वाणी पर सयम रखे, यदि ऐसा है तो भी। व्यवस्था करे आप

रुद्रादित्य—आज्ञा देव ।

[एक ओर महामात्य रुद्रादित्य प्रस्थान करते हैं और दूसर ओर से महिषी चित्रांगदा तथा शशिप्रभा परिचारिकाओं के साथ व्यथित हुई प्रवेश करती है । वे पर्यङ्कासन के निकट बढती है, उनकी मुद्रा पीडामय होती चली जाती है । मुञ्जदेव उनकी व्यथा को देखकर—]

मुञ्जदेव—देवी, धैर्य धारण करें । व्यथित न हो ।

चित्रांगदा—आपका चित्त कैसा है देव ?

मुञ्जदेव—चिन्ता न करें सब ठीक हो जायगा । पेय ?

[चित्रांगदा आधार-स्तम्भ पर रखे रजत-जल-पात्र में से एक लघु स्वर्ण-पात्र में जल लेना चाहती है । भैरवी बीच में ही लेकर पिलाती है । जल पीकर एक निश्वास लेकर—]

मुञ्जदेव—देवी, चित्त में व्याकुलता बढ रही है ।

चित्रांगदा—निरोध की व्यवस्था आवश्यक है । भैरवी ।

[भैरवी पखा झलने लगती है]

मुञ्जदेव—महादेवी बैठो, वधू तुम जाओ, भोज सीधे तुम्हारे प्रासाद में पहुँचेंगे, ऐसी व्यवस्था है । हमारी अस्वस्थता का भोज को भान न हो अभी ।

शशिप्रभा—बहिन, श्रीमान् देव अस्वस्थ हैं, मेरा निवेदन है शेष व्यवस्था स्थगित कर दी जाय ।

मुञ्जदेव—नही, तुम जाओ ।

शशिप्रभा—बहिन !

चित्रांगदा—हाँ, हाँ, तुम जाकर सँभाल करो। देव की सेवार्थ मैं हूँ।

[शशिप्रभा का अनिच्छापूर्वक परिचारिका के साथ प्रस्थान]

मुञ्जदेव—कैसी विडम्बना है। मानव क्या सोचता है, उसकी इच्छा अनिच्छा बन जाती है। विधि मानव के सुखद स्वप्नों पर प्रतिकूलता की मुद्रा अंकित करती है। धन्य री विडम्बना!

चित्रांगदा—स्वस्थता धारण करें देव! इस सुयोग में यह विघ्न अशुभ ही रहा है।

मुञ्जदेव—महामात्य की धारणा में अमंगल ग्रह प्रबल हुए हैं हमारे।

[परिचारिका का प्रवेश]

परिचारिका—(नत मस्तक) देव, महामात्य पधारे हैं। श्रीमान् के स्वास्थ्य के लिये पूछ रहे हैं।

मुञ्जदेव—जा, उन्हें लिवा ला। हम एकाकी मन्त्रणा चाहते हैं।

[नत मस्तक परिचारिका का प्रस्थान, महादेवी चित्रांगदा तथा अन्य परिचारिकाओं का दूसरी ओर से प्रस्थान। पहिली परिचारिका के साथ रुद्रादित्य का प्रवेश। मुञ्जदेव के संकेत पर परिचारिका का प्रस्थान।]

रुद्रादित्य—अब श्रीमान् स्वस्थ होंगे?

मुञ्जदेव—महामात्य, बैठिये। सब व्यवस्था हो गई होगी? रुद्रादित्य! सम्भव है आपका कथन सत्य हो। आज की इस घटना ने हमें भी भावी अनिष्ट की कल्पना

से सिहरन होने लगती है। हमें कुछ सूझ नहीं पड़ता, महामात्य क्या करें ?

रुद्रादित्य—श्रीमान्, एक उपाय है। राजकुमार को अवन्तिका से हटा दिया जाय। कहीं दूरस्थ प्रदेश में ले जाकर रखा जाय।

मुञ्जदेव—इससे प्रयोजन सिद्ध हो सकेगा, रुद्रादित्य ? प्रजावर्ग में असन्तोष जागृत हो उठेगा। सम्भव है विद्रोहाग्नि ही भभक उठे।

रुद्रादित्य—देव, चिन्ता न करें। एक दिन, सम्भव है, इसका प्रतिकार करना ही पड़े। आज नहीं तो निकट भविष्य में हमें कठोर दमन-नीति का आश्रय भी लेना पड़ेगा। मृदु व्यवहार राज्य-सत्ता के निमित्त उचित नहीं है। सफल शासक को मत्स्य-न्याय का आश्रय वाछनीय है देव। विश्व-विजेता के हृदय करुणा-विहीन ही होते आये हैं। स्व-पोषण के निमित्त हमें शोषण भी करना होगा। सिंहासन पर आधिपत्य रखने के हेतु दुर्बलता से संघर्ष लेना होगा। श्रीमान् स्वयं प्रणेता हैं। स्व-भाग्य-विधायक हैं।

मुञ्जदेव—महामात्य, प्रतीत होता है, हम पर प्रवञ्चना आधिपत्य स्थापित करना चाहती है। हमारे मन से करुणा निष्क्रमण करना चाहती है। हमें आपका मन्त्र प्रिय है। हम उसी के अनुसार चलेंगे।

चित्रांगदा—हाँ, हाँ, तुम जाकर सँभाल करो। देव की सेवार्थ मैं हूँ।

[शशिप्रभा का अनिच्छापूर्वक परिचारिका के साथ प्रस्थान]

मुञ्जदेव—कैसी विडम्बना है। मानव क्या सोचता है, उसकी इच्छा अनिच्छा बन जाती है। विधि मानव के सुखद स्वप्नों पर प्रतिकूलता की मुद्रा अंकित करती है। धन्य री विडम्बना!

चित्रांगदा—स्वस्थता धारण करें देव! इस सुयोग में यह विघ्न अशुभ ही रहा है।

मुञ्जदेव—महामात्य की धारणा में अमंगल ग्रह प्रबल हुए हैं हमारे।

[परिचारिका का प्रवेश]

परिचारिका—(नत मस्तक) देव, महामात्य पधारे हैं। श्रीमान् के स्वास्थ्य के लिये पूछ रहे हैं।

मुञ्जदेव—जा, उन्हें लिवा ला। हम एकाकी मन्त्रणा चाहते हैं।

[नत मस्तक परिचारिका का प्रस्थान, महादेवी चित्रांगदा तथा अन्य परिचारिकाओं का दूसरी ओर से प्रस्थान। पहिली परिचारिका के साथ रुद्रादित्य का प्रवेश। मुञ्जदेव के संकेत पर परिचारिका का प्रस्थान।]

रुद्रादित्य—अब श्रीमान् स्वस्थ होंगे?

मुञ्जदेव—महामात्य, बैठिये। सब व्यवस्था हो गई होगी? रुद्रादित्य! सम्भव है आपका कथन सत्य हो। आज की इस घटना में हमें भी भावी अनिष्ट की कल्पना

से सिहरन होने लगती है। हमे कुछ सूझ नही पडता, महामात्य क्या करें ?

रुद्रादित्य—श्रीमान्, एक उपाय है। राजकुमार को अवन्तिका से हटा दिया जाय। कही दूरस्थ प्रदेश में ले जाकर रखा जाय।

मुञ्जदेव—इससे प्रयोजन सिद्ध हो सकेगा, रुद्रादित्य ? प्रजावर्ग में असन्तोष जागृत हो उठेगा। सम्भव है विद्रोहाग्नि ही भभक उठे।

रुद्रादित्य—देव, चिन्ता न करें। एक दिन, सम्भव है, इसका प्रतिकार करना ही पडे। आज नही तो निकट भविष्य में हमें कठोर दमन-नीति का आश्रय भी लेना पडेगा। मृदु व्यवहार राज्य-सत्ता के निमित्त उचित नही है। सफल शासक को मत्स्य-न्याय का आश्रय वाछनीय है देव! विश्व-विजेता के हृदय करुणा-विहीन ही होते आये है। स्व-पोषण के निमित्त हमें शोषण भी करना होगा। सिंहासन पर आधिपत्य रखने के हेतु दुर्बलता से संघर्ष लेना होगा। श्रीमान् स्वय प्रणेता है। स्व-भाग्य-विधायक है।

मुञ्जदेव—महामात्य, प्रतीत होता है, हम पर प्रवञ्चना आधिपत्य स्थापित करना चाहती है। हमारे मन से करुणा निष्क्रमण करना चाहती है। हमें आपका मन्त्र प्रिय है। हम उसी के अनुसार चलेंगे।

रुद्रादित्य—उपकृत हुआ श्रीमन्, इसे प्रवञ्चना न समझें। विश्व का समस्त प्रागण विद्रोह, सघर्ष, अभियोग और हत्याओ से भरा हुआ है। एक-एक के दमन पर तुला हुआ है। और विना इसके विश्व में काम भी नही चलता। देव, विश्व के वात्याचक्र से अनभिज्ञ नहीं हैं। प्रतिहिंसा बर्बर होती है, श्रीमन्। सिन्धुलराज भोज के निष्कासन से असन्तुष्ट होगे ही। सम्भव है, उनमें भी प्रतिकार-भावना जागृत हो उठे। उसका साकार रूप घर की ही ईंटें उखाडने को तत्पर हो जाय।

मुञ्जदेव—कल्पना कर रहा हूँ महामात्य! जब तक मन में करुणा ने घर कर रखा था—आज करुणा अपना स्थान छोड़ चुकी है। उसकी अनुपस्थिति में ही हम अपना भविष्य निर्माण करेंगे। सिन्धुल और भोज, हमारे मार्ग में रोड़े नहीं रह सकेंगे महामात्य।

रुद्रादित्य—श्रीमान् समर्थ हो। कटकाकीर्ण मार्ग शूल-रहित करें। देव, मुझे एक उपाय सूझा है। सिन्धुलराज अवन्तिका से सम्भवत चले ही जायेंगे। स्वभावत वे यहाँ अधिक रुकते नहीं है।

मुञ्जदेव—सम्भव है, ऐसा ही होगा उनका स्वभाव तो ऐसा ही बन गया है। फिर ?

रुद्रादित्य—फिर क्या देव ? वंगराज विश्वासपात्र है ही। देव के प्रति उनके हृदय में अथाह श्रद्धा भरी हुई है। राजकुमार भोज को मृगया के बहाने ले जायेंगे—दूर, कहीं दूर-एकाकी प्रदेश मे। वगराज आकर घोषित कर देंगे, केहरि के आखेट में कुँवर कीर्ति-शेष हो गये, वास्तव में वे स्वयं भोज का आखेट करेंगे।

मुञ्जदेव—(उन्मादपूर्वक) महामात्य! महामात्य! इतनी भीषणतम कल्पना! इस राज्य-सत्ता के लिये श्रीहर्ष के वंश का नाश, पितृ-कुल का नाश! महामात्य! हमसे ऐसा न होगा। कुटिल और कृतघ्न जीवन (आवेशपूर्वक) प्रलयकारी सूर्य का प्रादुर्भाव हो, इससे पूर्व यही श्रेष्ठ है, हम स्वय हट जायँ।

रुद्रादित्य—देव ममता छोडें। मार्ग प्रशस्त करे। भवितव्यता होकर ही रहती है। मनुष्य तो निमित्त मात्र है। जब यह होना ही है तो श्रीमान् क्या, और मै क्या ? किसी को निमित्त तो बनना ही होगा।

मुञ्जदेव—द्वेष से प्रेरित संकल्प की छाया कठोर होती है, महामात्य! अन्तर्द्वन्द्व छिपाये छिप नही सकता। हमारा मर्मस्थल कठोरता धारण करता जा रहा है। हम अपनी सत्ता—एकछत्र सत्ता स्थापित करना चाहते हैं।

रुद्रादित्य—यथेष्ट देव, इसी का उपादान करना होगा। श्रीमन् स्वस्थता धारण करें। सेवक समस्त व्यवस्था-भार अपने ऊपर लेगा।

मुञ्जदेव—रुद्रादित्य! तुम्हारे स्कन्ध इतना दुष्कर भार वहन कर सकेंगे? उनमें सुदृढ़ता है?

रुद्रादित्य—देव, भविष्यत् की कौन कहे? श्रीमान् विश्राम करें।

[पट परिवर्तन]

अंक दो

पहला दृश्य

काल—वही विक्रम की ग्यारहवीं शती का पूर्वार्द्ध।

स्थान—वही पूर्वाङ्क छठे दृश्य के समान। समय मध्याह्न के बाद।

[राजमहिषी चित्रांगदा पर्यंकासन पर पौढी हुई हैं। परिचारिकाएँ उनके समीप ही एकत्रित हैं। चित्रांगदा उद्विग्नमना है।]

भैरवी—महादेवी, एक भयंकर समाचार सुना है। है तो यह काना-फूँसी ही। [इसकी सत्यता पर भी भ्रम हो जाना स्वाभाविक है।

[चित्रांगदा के संकेत पर भैरवी के अतिरिक्त दूसरी परिचारिकाएँ चली जाती हैं।

चित्रांगदा—भैरवी, सुनूँ तो क्या बात है? मेरा मन भी कुछ समय से भ्रमित हो रहा है। यही सोचती हूँ, एकाकी रहूँ, किसी प्रकार के वात्याचक्र में न फँसूँ।

भैरवी—महादेवी, समझ में नहीं आता, यह कुचक्र कैसे बना। कहा तो यह जा रहा है कि इसका मूल महामात्य है।

चित्रांगदा—बात भी कहेगी ? सुनूँ तो।

भैरवी—एक भयानक षड्यन्त्र चल रहा है, महादेवी के प्रासाद में उसके सूत्रधार हैं, महामात्य रुद्रादित्य। अनुभव नहीं करती देवी, देव के चित्त पर आकुलता छाई हुई है। देवी के मुखारविन्द पर मेघ-माला आच्छादित है।

चित्रांगदा—भैरवी, तू क्या कह रही है ? समझती है ! इस कथन की गम्भीरता पर विचार किया है तूने ? जीवन से खेलना चाह रही है ?

भैरवी—(कम्पित-सी) देवी का संरक्षण है, तब मैं भयभीत क्यों होऊँ। किन्तु सत्य छिपाये छिपता नहीं, मैं क्या करूँ ?

चित्रांगदा—इतना सब कुछ कहा, किन्तु हमारी उत्सुकता का शमन न कर सकी।

भैरवी—(गम्भीरता धारण करती हुई) तो सुनें महादेवी। राजकुमार भोज आखेट के लिए गये हैं। वे अब लौटकर नहीं आने वाले हैं। स्वयं उनका आखेट किया गया है वहाँ।

चित्रांगदा—(सरोष) मूर्खा, क्या बक रही है ? तेरी जिह्वा खींच लूँगी। कलमुँही, क्या कहती है ? अकथनीय, कुविचार !

भैरवी—(भयभीत होकर) महादेवी, क्षमा करें। अब न कहूँगी, किसी से भी न कहूँगी। किन्तु क्या करूँ देवी, जी नहीं

मानता। आपका मन मलीन रहता है। देव का मृदु हास्य कपूर के समान स्वत. विलीन होता चला जा रहा है। (सवेग) क्या महादेवी अनुभव नही कर पा रही हैं? नरेन्द्र क्यों व्यथित हैं? आप क्यो उद्विग्न हैं?

चित्रांगदा—हमें पीडा है, देव अस्वस्थ-से दिखाई देते हैं। उनका मन व्यथित और चित्त भ्रमित-सा रहता है।

भैरवी—देव की अस्वस्थता के कारण महादेवी पीडित हैं और भोजराज के प्रति मालवेन्द्र। प्रासाद में पीडा है, अवन्तिका मे पीडा है, सबमे पीडा है। यह विश्व ही पीडामय हो गया है।

चित्रांगदा—भैरवी, भोजराज के कारण देव व्यथित है, यह कैसे जाना तूने?

भैरवी—महादेवी, मैं तो इतनी ही जानती हूँ कि देव व्यथित हैं। मेरे ज्ञान की परिधि इतनी ही है। इन कुचक्रो को मैं नही समझती। महादेवी के दु.ख में स्व-पीडा अनुभव करती हूँ। आपके मृदु हास्य से मेरा रोम-रोम पुलकित होता रहता है।

चित्रांगदा—सुन, देव आते ही होगे। देख, तू सावधान रहना, मैं उनसे पूछूँगी, तू यहाँ से चली जाना। अनुभव तो हमें भी हो रहा है, देव यहाँ आते हैं तो एकाकी नही रहने देने पाते और जब वे यहाँ नही होते तो एकाकी रहते हैं, यह मैने सुन रखा है। चित्त में व्यथा छिपाये रहते

हूँ। जी चाहता है कि देव की पीडा का हेतु पूछूँ, किन्तु साहस नही होता। आज अवश्य पूछकर रहूँगी।

[मुञ्जदेव का प्रवेश]

चित्रांगदा—पधारिये, देव!

[मुञ्जदेव गहरी निश्वास छोडते हुए पर्यङ्कासन पर बैठते हैं। मन पर व्यथा छाई हुई है। शरीर निस्तेज-सा प्रतीत होता है। भैरवी वहाँ से स्वत चली जाती है]

चित्रांगदा—(निस्तब्धता भग करती हुई) कुछ दिनो से देव अमित-से रहते हैं। मन में पीडा समाई हुई प्रतीत होती है, कारण क्या हो सकता है देव? दासी को उपकृत करेंगे!

मुञ्जदेव—(दीर्घ निश्वास लेकर) देवी, कुछ भी नही है। चित्त में व्यथा है, यह मुख की मुद्रा से स्पष्ट होता रहता है।

[उठकर चलने लगते है, चित्रांगदा अनुसरण करती हुई]

चित्रांगदा—देव! दासी श्रीमान् के हृदय की वेदना अनुभव कर रही है। अवन्तिका का बच्चा-बच्चा इस बात का साक्षी है कि देव में राजकुमार भोज के प्रति वात्सल्य-स्नेह शिथिल नहीं है, उनका वियोग खटक रहा है देव! विकलता असह्य हो उठी है, किस दुर्दिन के लिए यह वात्सल्य छिपा रखा है देव! सुनूँ तो।

मुञ्जदेव—(विषादपूर्वक) महादेवी भ्रम में हैं। हमें मालव पर कृष्ण मेघ मँडराते दृष्टिगोचर हो रहे हैं। मालव के

भविष्यत् में एक गहन चीत्कार सुनाई दे रहा है। वड़े भयानक दुर्दिन आने वाले है, ऐसा सुना है हमने।

चित्रांगदा—इससे भी अधिक भयानक और क्या होने वाला है, देव ! किससे सुना देव ने ?

मुञ्जदेव—चित्रे ! तुम नही जानती (विषादपूर्वक) अवन्तिका की प्राचीरों से, इन प्रासादो की ईंटो से एक ध्वनि—करुणामय ध्वनि निकलती रहती है। उसे तुमने नही सुना। तुम सुन भी नही सकती। उसे हम सुन रहे है। वह पीडा, वह कराह, वह वेदना, मानो हम पर हँस रही है।

चित्रांगदा—देव हम भी अभ्यस्त हो चुके है, मूक पाषाणो की मूक वेदना हमने भी सुनी थी, किन्तु हमें विश्वास नही हो पा रहा था। तव यह सत्य है देव ?

[मुञ्जदेव एक वातायन के निकट खडे हो वाहर की ओर देखने लगते हैं। चित्रागदा उनके पीछे खडी हो जाती है]

मुञ्जदेव—देवी, सत्य क्या है ? यह हम भी नही समझते। सत्य का ज्ञान करने के लिये हम प्रतीक्षा कर रहे है।

चित्रांगदा—सत्य की प्रतीक्षा कैसी देव, वह तो सनातन है। कल्याण-कारी है। सत्य से किसका अहित हुआ है देव ?

मुञ्जदेव—अव हमें सत्य की ही प्रतीक्षा करनी होगी। (कातरता-पूर्वक) हम एकाकी रहना चाहते हैं, देवी !

चित्रांगदा—हम अपना अधिकार त्याग कर दें, देव ! श्रीमान् को तुष्टि मिल सके तो

मुञ्जदेव—हम महादेवी के अधिकार का अपहरण नही कर रहे।

चित्रांगदा—दासी उपकृत हुई। तब हमें भी अपना सहयोगी बनालें देव ! व्यथा को हल्का कर सकी तो धन्य समझूँगी।

मुञ्जदेव—हमारी व्यथा को भविष्य ही हल्की और भारी कर सकता है। देवी की शक्ति से बाहर की वस्तु है। उससे संघर्ष न लें। हार खानी पड़ेगी।

चित्रांगदा—यथेष्ट देव ! हम अपनी पूर्व प्रश्नावली से सम्बन्ध जोड़ना चाहती है। भोजराज के सम्बन्ध में सत्य क्या है ? देव जिज्ञासा को शान्त करें।

मुञ्जदेव—देवी, हमने कहा था, हम प्रतीक्षा कर रहे है—महाप्रलय के द्वार से। किन्तु इतना अवश्य है, देवी भित्तियो की वाणी पर विश्वास की नींव न रखें।

चित्रांगदा—भित्तियो का वाणी पर विश्वास करती तो देव-वाणी की मुद्रा उस पर अंकित कराने का आग्रह न करती।

[मुञ्जदेव वातायन से हटकर पुन पर्यङ्कासन पर आकर उद्विग्न अवस्था में लेट जाते है, उनकी व्यथा बढती जा रही है। चित्रांगदा उसे अनुभव करके]

चित्रांगदा—देव क्षमा करें, श्रीमान् की आत्मा कराह उठी है।

मुञ्जदेव—सम्भव है, देवी का अनुमान सत्य हो।

[परिचारिका का प्रवेश]

भैरवी—(नत मस्तक) महादेवा क्षमा करें, महामात्य आज्ञा चाहते हैं !

मुञ्जदेव—(आतुरतापूर्वक) हाँ, हाँ, हम उनकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। शीघ्रता करें। महादेवी, आप कक्ष में पधारें।

[व्यथित-चित्त से चित्रागदा वहाँ से चली जाती है। रुद्रादित्य के साथ वत्सराज का प्रवेश]

रुद्रादित्य—देव को प्रणाम स्वीकार हो।

वत्सराज—श्रीमान् की जय हो।

मुञ्जदेव—(आतुरतापूर्वक) वगराज कहिये ! विलम्ब हुआ हम आपकी प्रतीक्षा कर रहे थे।

वत्सराज—श्रीमान् समस्त अवन्तिका जान चुकी है। (कृत्रिम उदासीनतापूर्वक) राजकुमार भोज आखेट करते समय भटक गये थे, सिंह के आघात से काल-कवलित हो गये।

मुञ्जदेव—(व्यग्रतापूर्वक) वत्सराज शी कहो। हमें यथार्थ से अवगत कराओ।

वत्सराज—देव ! क्षमा करें, परवश्यता ने कर्त्तव्य-पालन करने पर वाध्य किया।

मुञ्जदेव—रुद्रादित्य, सर्वनाश हो गया, हम कलंकित हो गये। हमारे जीवन में कलक का टीका लग गया।

[इधर-उधर देखकर रुद्रादित्य एक पल्लव निकालकर देना चाहते हैं। मुञ्जदेव उसे देखकर विह्वल हो उठते हैं। रुद्रादित्य को पढने का आदेश देते हुए]

मुञ्जदेव—इन कृष्णाक्षरों में हमारे लिए क्या विधान रचा गया है ? रुद्रादित्य हम सुनें।

रुद्रादित्य—मान्धाता स महीपति कृतयुगालंकारभूतो गत ।
सेतुर्येन महोदधौ विरचित क्वासौ दशास्यान्तक ॥
अन्येचापि युधिष्ठिर प्रभृतयो याता दिव भूपते ।
नैकेनापि समं गता वसुमती मन्ये त्वया यास्यति ॥*

मुञ्जदेव—अनर्थ, वत्सराज, महान् अनिष्ट हो गया। (अति विह्वल होकर) महामात्य, हमारे अविवेक ने यह क्या कर डाला ? पाप की पराकाष्ठा होती है, वत्सराज ! इस निर्मम हत्या का दोष हमारे माथे पर चढकर बोलेगा। व्यक्ति-द्वेष ने, राजसत्ता के मदांध शासक के कुचक्र ने, एक होनहार बालक की हत्या कर डाली। महामात्य, आप सफल हुए। (कातरतापूर्वक) अब क्या करें, हम-सा पातकी, पितृ-कुल-घातक इस ससार में जीवित रहेगा ! शासन-सत्ता के मोह ने हमें पशुवत् कृत्य करने को बाध्य कर दिया। प्रभु हमें क्षमा न कर सकेंगे, रुद्रादित्य !

रुद्रादित्य—देव, स्वस्थता धारण कीजिये। मन पर सयम रखें श्रीमान्, अन्यथा भयकर अनर्थ हो जायगा। यह षड्यन्त्र प्रकट हो

---

* अर्थ —हे राजन् ! सतयुग का सर्वश्रेष्ठ मान्धाता भी चला गया। त्रेतायुग का, वह समुद्र पर सेतु बांधकर रावण को मारने वाला, राम भी न रहा। द्वापर युग के युधिष्ठिर आदि भी स्वर्गस्थ हो गये। परन्तु धरती किसी के साथ नहीं गई। सम्भव है, कलियुग में अब आपके साथ चली जाय।

गया तो हमारा जीवन कटकमय बन जायगा । जन-पद न्याय-दण्ड अपने अधीन कर हमें श्वान-मृत्यु के लिये वाध्य करेगा । इतिहास युग-युगान्तर तक कलंकित करता रहेगा । देव, शान्त हो, विधि के विधान को कौन मेंट सका है, देव ?

मुञ्जदेव—(सरोप) वत्सराज, तुमने यह क्या कर डाला ! निरस्त्र बालक पर आघात करते समय तुम्हारा हाथ खंडित न होगया । तुम्हारा कोमल हृदय न पसीजा । तुम भी हमारे कुचक्र में सम्मिलित हो । न्याय-दण्ड से तुम वञ्चित नहीं रह सकते । कहो, सत्य कहो, भोज ने अन्तिम समय कुछ और भी कहा था ?

वत्सराज—श्रीमान् क्षमा प्रदान करें । कुमार की विनम्र वाणी अब भी मेरे कानो में गुञ्जित हो रही है । उन्होंने कहा था—देव की दृष्टि में मेरा ऐसा कौन-सा कर्म था जिससे मुझे दोषी पाया । यदि देव की ऐसी ही इच्छा थी तो और भी प्रसग हो सकते थे । इस जघन्य कर्म के हेतु देव को मृत्युपाश यहाँ तक फैलाना पडा । एक इंगित पर मै प्राण विसर्जन कर देता ? यह कलंक देव ने, शासक ने, क्यो अपने सिर लिया ? मेरा पालन जिस प्रासाद में, जिन देव ने वात्सल्य-स्नेह से किया उनका हृदय इतना कठोर कैसे बन गया, यह समझ मे नही आता ।

मुञ्जदेव—(कातरतापूर्वक) और कुछ न कहा इन कलंकितो के लिये ?

वत्सराज—कहा था देव ! उन्होने कहा था, वत्सराज, विलम्ब न करो। स्वामी की आज्ञा-पालन की अवहेलना आपको इष्ट नहीं है। यह शरीर तो नश्वर है, आत्मा अमर है, शरीर तत्वों से विघटित होकर पुन शरीर धारण करेगा। मेरी यही कामना है, मै महादेवी की कुक्ष में जन्म लूँ और पुन अपना अस्तित्व देव के निमित्त ही कीर्ति-शेष कर सकूँ।

मुञ्जदेव—(कातरतापूर्वक) वत्सराज कहे जाओ। सुनो रुद्रादित्य, भोज की वाणी। हम सुनना चाहते हैं, हेय कर्म पर और क्या कहा था ?

वत्सराज—देव, जब मैंने अपनी विवशता प्रकट की तो भोज ने अपना खड्ग एक ओर फेंक दिया, (रुदनपूर्वक) अपना मस्तक झुका दिया, घुटने धरती पर टेक दिये। उन्होंने मुझ पामर-नीच को आदेश दिया, यह विश्व एक जजाल है, हम अपने पितृव्य की आत्मा की तुष्टि चाहते हैं। यदि तुम्हारे अकर्मण्य हाथ देव की आज्ञा का अनुष्ठान करने में शिथिल हैं तो मैं स्वय अपना अन्त कर तुम्हें कर्तव्य-पथ पर बढता देखना चाहता हूँ। किन्तु मेरे लिये यह हेय कर्म होगा, आत्म-घात होगा यह ! वत्सराज, निन्दनीय, हेय कर्म करने के लिये मुझ प्रेरित न करें। उठो, अपने कर्तव्य- धर्म का पालन कर, अपने स्वामी के प्रीति-पात्र बनकर, वसुन्धरा पर जीवित रहो।

मुञ्जदेव—(कातरतापूर्वक) और भी कुछ कहा था कुँवर ने ?

वत्सराज—देव, भोज ने कहा था, देव का शासन सुफल हो। मेरी आहुति से देव को प्रेरणा मिलती रहे। भविष्य में निर्दोष पर काल-दण्ड न उठे। शासक कुचक्रो में न फँसे। आत्म-पुकार को दृढ करें। मेरी धारणा में देव निर्दोष हैं। यह कुकृत्य किसी दूसरे का सृजन है। मानव भविष्य म प्रकाश की खोज करे, अन्धकार से सघर्ष ले।

मुञ्जदेव—(कातरतापूर्वक) कितना सुन्दर उपदेश है। हमारे कानो ने यह भी सुना और कुचक्रो का जाल भी हमने सुनकर ही रचा। हमारी आत्मा वलवती होती तो यह दुर्दिन देखने को न मिलता, वत्सराज! विश्वम्भर तव इच्छा वलीयसी। रुद्रादित्य, आपका कर्तव्य अव भी पुकार उठा है। उसे भी पूर्ण कीजिये। इस यज्ञ की पूर्णाहुति अव आप ही के हाथो होनी चाहिये।

रुद्रादित्य—देव क्षमा करें, मुझसे भयानक पाप वन गया है। इसका प्रतिफल मे स्वय भोगूँगा। निस्सन्देह निर्दोप आत्मा मेरे कुचक्र ने ही तडपती चली गई। देव, यह शीश अव श्रीमान् के आदेश के लिये प्रस्तुत है। मुझे दण्ड चाहिये। न्याय-दण्ड मेरे कुमत्र का विधान दे।

मुञ्जदेव—रुद्रादित्य, दोषी आप नही, हम है। ऐसे कुमत्र पर अपनी सहमति की मुद्रा अकित कर हमने ही पाप किया है। हम इसका दण्ड भोगेंगे। मिधुलराज

अब न्याय-दण्ड सँभालें, जनपद हमारा न्याय करे। हम अभियुक्त है, दण्डनीय है। वत्सराज, सिन्धुलराज को अवन्तिका शीघ्र ले आओ। (कातरतापूर्वक) भोज का एक-एक शब्दवृश्चिक-दश-सा दाहक प्रतीत हो रहा है। उस दाह से हमारे प्राण विसर्जन होना चाहते हैं। हम पर आकाश से विद्युत्-प्रवाह आकर क्यो नही गिरता ? पाप का कुमत्र हमारे ही सहार का निमित्त बने। रुद्रादित्य, हमारा मानव कहाँ खो गया ? यह दानव-स्वरूप हमें कटु प्रतीत हो रहा है। हमारा वात्सल्य कहाँ विगलित हो गया ? हमारी करुणा कहाँ वह गई ? रुद्रादित्य, अब हम इस सन्ताप से पीडित होकर जीवित नही रहेगे। हम उसी पथ का अनुगमन करेंगे जिस पर हमारा भोज गया है। उसकी निरीह आत्मा हमारी व्यवस्था की धज्जियाँ उडा रही है। रुद्रादित्य, हमें प्रायश्चित्त करना होगा और तुम्हे उसका प्रतिफल देखना होगा। हमारे आदेश का पालन करो—हमारे आदेश का पालन हो।

रुद्रादित्य—श्रीमान्, सेवक प्रस्तुत है।

मुञ्जदेव—हमें श्रीमान् न कहो रुद्रादित्य, इतने भारी शब्द का भार हम पर न डालो। हमारा कर्म श्रीमानो का कर्म नही, तुच्छ से तुच्छ मानव ऐसा कुकृत्य नही करते। सिंह ने गो-वत्स पर आघात किया है, भुजगी ने अपने ही बच्चो का भक्षण किया है, उसका प्रतिकार हम लेंगे—अपनी आत्मा से लेगे, अपनी देह से लेगे। आज

सूर्यास्त हम नही देखना चाहते । कल का उदित बाल-रवि हम कलंकित को आकर न देखे । अवन्तिका में एक भीषण हाहाकार देखे, हमारा अन्याय न देखे । हमें अपना न्याय-दण्ड स्वय अपने प्रति धारण करने दो । (कठोरतापूर्वक) रुद्रादित्य, सबको एकत्रित करो, हम पाप का प्रायश्चित्त करने जा रहे हैं । प्रायश्चित्त विश्व देखे और हम करें । हमारा प्रायश्चित्त हमारे गौरव के अनुकूल ही होगा ।

रुद्रादित्य—देव, क्षमा करें, मन को सयम दें, स्वस्थता धारण करें ।

मुञ्जदेव—हमें फिर देव कहा ? हमें मनुष्य भी न कहो, हम मनुष्य से भी हेय है । हमारा कर्म घृणित है । हमे मनुष्य कहकर मनुष्य का अपमान करना है । मनुष्य ऐसा कर्म नही करते । अपनी आत्मा का हनन स्वय नही करते मनुष्य ! हम मनुष्य-धर्म से भी गिर चुके है । देव की सज्ञा हमें सर्प-दश-जनित पीड़ा पहुँचा रही है । यह लो अपने राज्य-चिह्न । इन्हे धारण करने का अब हमें कोई अधिकार नही रहा । हमें मुञ्ज कहो, केवल मुञ्ज ।

[मुञ्जदेव राजकीय वस्त्र तथा राज्य-चिह्न उतारकर धरती पर फेंकते है । दिशाएँ व्यथा और विह्वलता से पूरित हो जाती है ।]

मुञ्जदेव—रुद्रादित्य, सुना तुमने । हम अपनी देह जल-समाधि में विगलित कर देगे । अवन्तिका-प्रदेश में प्रवाहित

होने वाली चर्मण्वती में हम इस देह को फेंक देंगे। महिष्मती चित्रा से कह दो, हम सत्य की खोज के लिये प्रयाण कर रहे हैं। असत्य का आवरण हटाकर, हम सत्य ला रहे हैं। (रुदनपूर्वक) कहाँ चली गईं वे? अब सुनें वे, सत्य क्या है! सत्य देखें, भोज के प्रति सत्य जानें, सत्य के स्वरूप को देखें। सत्य का फल कटु है और मृदु भी। हमने सत्य का कटु रूप जाना। मृदु सत्य से हम दूर रहे!

रुद्रादित्य—जल-समाधि लेकर पाप का आश्रय लेंगे देव, यह भीरुता है श्रीमान्।

मुञ्जदेव—यथेष्ट रुद्रादित्य, हम पाप का आश्रय क्यों लें। आपने ठीक कहा। चर्मण्वती का निर्मल जल हमसे अपवित्र हो जायगा। वह सुललित-सलिला युग-युगान्तर तक अपवित्र बनी रहेगी। उसका अणु-अणु अवन्तिका को अपवित्र कर देगा। जल-समाधि नहीं लेंगे—हम जल-समाधि न लेंगे।

[महादेवी चित्रांगदा, शशिप्रभा तथा अन्य परिजनों का प्रवेश। वत्सराज तथा रुद्रादित्य खड़े हो जाते हैं।]

शशिप्रभा—देव शान्त हों। दैव इच्छा बलवती (कातरतापूर्वक) मालवेन्द्र इसको विस्मृत कर दें।

मुञ्जदेव—यह कौन कह रहा है? विस्मृत कर दें। शशिप्रभा, भोज की माता? क्या उनका मातृत्व कुण्ठित होगया है? स्व-कुक्ष-बालक की हत्या सुनकर भी वे कठोरता धारण करना चाहती है।

[चित्रागदा तथा शशिप्रभा रुदन-मुद्रा में]

शशिप्रभा—देव अब क्या हो सकता है ? जो होना था सो हुआ ।

मुञ्जदेव—(गम्भीरता धारण करते हुए) अभी बहुत कुछ होना शेष है । अवन्तिका संहार देखेगी, एक प्रलय देखेगी । और उस प्रलय में हम अपनी आहुति देंगे । अनुष्ठान-पूर्ति में हम अपनी हव्य आहुति देंगे, तब हमें शांति मिलेगी । शान्ति ! अटल शान्ति ! ! रुद्रादित्य प्रासाद के प्रागण में समिधा-सचय कराओ । एक वेदी का निर्माण कराओ और उसमें हमारी हव्य दी जाय । हम वीर-मृत्यु का आह्वान करेंगे । शशिप्रभा ! हमने तुम्हारे बालक की हत्या कराई है । (कातरतापूर्वक) पिता ने पुत्र पर आघात किया है और पिता अब उसी का अनुसरण कर रहा है । आप लोगो की आत्मा हमें क्षमा-दान दे सकी तो हम उपकृत्य होंगे । हमारी आत्मा सन्तुष्ट होगी ।

[चारो ओर निविड निस्तब्धता छा जाती है]

शशिप्रभा—(रुदन करके) देव का कथन सशयात्मक होता है । देव का इसमें दोष ही क्या है ? और यदि यह सत्य भी हो तो श्रीमान् को अपने अनुज की शपथ है । आपका प्रायश्चित्त कठोर है, महान् है । देव ! अपना निर्णय परिवर्तन करें । भवितव्यता जब ऐसी ही थी तब किया क्या जाय । हृदय पर पाषाण रखना ही होगा ।

[चित्रागदा शशिप्रभा से लिपटकर पुन रुदन करती है।]

चित्रागदा—वहिन, क्षमा कर दो। हम तो अपना कलंकित मुख भी दिखाने योग्य न रहे। जीवन में कलक का टीका लग चुका है, पीडा के भार से हम दब रहे हैं।

शशिप्रभा—वहिन (रुदन करती है)।

मुञ्जदेव—(कठोरता से भरकर सरोष) रुद्रादित्य, हमारे आदेश का पालन हो। आपकी कर्त्तव्य-परायणता कहाँ चली गई? आप कर्मशून्य क्यो हो गये?

रुद्रादित्य—देव, क्षमा करें।

मुञ्जदेव—हमने आपको क्षमा कर दिया, किन्तु क्षमा देने वाले वास्तविक अधिकारी तो हम नही। ध्यान रहे, हमारा विधान अपरिवर्त्तनीय है। आप हमारे कथनानुसार व्यवस्था करें। रुद्रादित्य, आपने हमारी हर आज्ञा का पालन किया है, अब सम्भवत यह हमारी अन्तिम आज्ञा है, उसका भा पालन हो। हमें इस नश्वर देह से मोह नहीं रहा है। कृत-कृत्य होइये रुद्रादित्य।

रुद्रादित्य—मुझे दण्ड दीजिये देव, दोष मेरा है।

मुञ्जदेव—आप अपना दण्ड स्वय निर्धारित करें, किन्तु इससे पूर्व नही कि हम अपना दण्ड भोग लें।

रुद्रादित्य—यह कठोर आज्ञा है देव। मुझसे यह न हो सकेगा। मेरी शक्ति क्षीण हो चुकी है।

मुञ्जदेव—रुद्रादित्य, हमने आपका सदा सम्मान रखा है, यह ध्यान रहे। अब हमारा क्रोध भभक उठा है, और क्रोध दण्ड देना चाहता है।

रुद्रादित्य—श्रीमान् यही तो मेरी कामना है, देव दण्ड-विधान दें, शिरोधार्य करूँगा, मैं अडिग हूँ।

मुञ्जदेव—(गम्भीरतापूर्वक) तो सुनें रुद्रादित्य, आपके पाप का प्रायश्चित्त यही है कि आप हमारी चिता स्वय प्रस्तुत करें। हम उस प्रज्ज्वलित चिताग्नि में प्रवेश करेंगे। चिता वेदी प्रासाद-प्रागरण में ही निर्मित होगी, अविलम्ब!

रुद्रादित्य—किन्तु देव मेरा विनम्र निवेदन है, उसे पूरा करने का आश्वासन देने की अनुकम्पा करें।

मुञ्जदेव—हम अब वचन-बद्ध नही होगे। अपना मार्ग प्रशस्त करेंगे। आप अपने मार्ग के पथिक है, हमारी अनुपस्थिति में जो इष्ट समझे करे।

रुद्रादित्य—(विषादपूर्वक) तब ऐसा ही होगा देव!

[मुञ्जदेव वहाँ से उठकर प्रागरण की ओर बढते है, गम्भीर मुद्रा मे। वातावरण नितात निस्तब्ध है। सब लोग मुञ्जदेव का अनुकमरण करते है। प्रागरण में चिता वेदी बनाई जाती है। रुद्रादित्य उस पर चिता-काष्ठ सचित करते है, नेत्रो से अविरल अश्रु गिरते दृष्टिगोचर होते है।]

मुञ्जदेव—रुद्रादित्य, आपके हृदय में करुणा! आश्चर्य! आज करुणा प्रसवित हो रही है। आपका हृदय द्रवित हो

उठा । किन्तु रुद्रादित्य, स्मरण रखो हमें वीर-मृत्यु का आह्वान करना है । यह कातरता कायरता की प्रतीक है । हमारी मृत्यु की कल्पना से सिहरन न उठे । नेत्र अश्रु-विमोचन न करें । शीघ्रता करें, भुवन-भास्कर अस्ताचल की ओर द्रुतगति से जा रहे हैं, रुद्रादित्य !

रुद्रादित्य—देव की आज्ञा शिरोधार्य है ।

मुञ्जदेव—वत्सराज, आप सदैव हमारे मित्र रहे हैं । अन्त में मित्रता को भी कलक का भार ढोना पडा । मित्र ! गम्भीरता धारण किये हुए है ?

वत्सराज—(कातरतापूर्वक) देव, अभय प्रदान करें ।

मुञ्जदेव—अब न्याय-दण्ड हमारे अधीन नही है । वह तो सिन्धुल-राज के लिये सुरक्षित होगा । देवी शशिप्रभा उसका प्रतिनिधित्व करती है ।

वत्सराज—देव, अभय दे ।

मुञ्जदेव—हमने कहा न, हम अधिकारी नही रहे ।

वत्सराज—यथेष्ट देव, महादेवी शशिप्रभा कहां है । वे ही इस अनौचित्य को रोक सकेंगी । मुञ्जदेव महाप्रयाण की ओर कटिबद्ध है, उनका अभियान रोकें । (कातरता-पूर्वक) देवी महादेवी, महादेवी, कहां है ? रोकिये, अवन्तिका को महाप्रलय से बचाइये । मेरा निवेदन मानिये ।

[शशिप्रभा का पृष्ठ-भाग की ओर से प्रवेश]

शशिप्रभा—(कातरतापूर्वक) वत्सराज क्या कहना है ? आपने महादेवी की संज्ञा से संबोधित किया ? इसका हेतु ? महादेवी तो चित्रांगदा है ।

वत्सराज—देवी मुञ्जदेव ने यह अधिकार आपके पक्ष में परिवर्त्तित कर दिया है । महादेवी, रोकिये, न्याय-दण्ड आपके अधीन है ।

शशिप्रभा—मैं यह क्या सुन रही हूँ ?

वत्सराज—महादेवी चाहे तो यह भीषण प्रलय रुक सकता है. मुझे एक प्रहर का अवसर दें ।

शशिप्रभा—मैं भवदीय आशय समझ न सकी । वत्सराज स्पष्ट करें ।

वत्सराज—महादेवी ! भोजराज मेरे संरक्षण में है । मुझे अभय मिले ।

[उपस्थित जन साश्चर्य उस ओर देखते हैं, रुद्रादित्य चिता पर काष्ठ रखना छोड देते हैं । सबकी मुद्रा पर प्रसन्नता छा जाती है ।]

मुञ्जदेव—(साश्चर्य) भोज जीवित है ! यह छलना है । हमें हमारी प्रतिज्ञा से विमुख करने के हेतु अवसर-उपलब्धि का आश्रय है ।

वत्सराज—नहीं देव, यही सच है । आपने सत्य पा लिया है ।

मुञ्जदेव—यदि यह सत्य है और पहला मिथ्या तो वत्सराज प्रमाणित करें।

वत्सराज—देव, एक प्रहर की अवधि चाहता हूँ।

शशिप्रभा—हम देते हैं। (प्रसन्नतापूर्वक) एक नहीं, दो प्रहर।

[शशिप्रभा पीछे चली जाती है]

मुञ्जदेव—वत्सराज, स्मरण रह, एक प्रहर सूर्यास्त होने में शेष है। यदि उस काल तक तुम यहाँ सप्रमाण प्रगट न हुए तो मुञ्ज का निश्चय अटल है। हाँ, रुद्रादित्य, आपकी गति शिथिल क्यो पड गई ? आप छलना पर विश्वास न करें। सूर्य की साक्षी में ही यह देह तत्वो में परिणत हो जानी चाहिए।

रुद्रादित्य—देव ने वत्सराज को एक प्रहर का अवसर प्रदान किया है। एक प्रहर की प्रतीक्षा करनी होगी।

मुञ्जदेव—रुद्रादित्य प्रतीक्षा मुञ्ज के लिये नही है। वह तो अपने निश्चित समय पर अभियान करेगा। सम्भव है सूर्यास्त तक वत्सराज न लौट सकें। तब हमारी आज्ञा कलुषित न हो जायगी। परमार-कुल की मर्यादा स्थिर रखने का एकमात्र साधन यही बच रहा है। कार्य की गति द्रुत हो रुद्रादित्य।

रुद्रादित्य—आज्ञा देव।

[रुद्रादित्य चिता प्रस्तुत करने लगते हैं। चित्रागदा का प्रवेश]

चित्रांगदा—देव, छोड़िये यह कर्म। वह्नि शशिप्रभा का कथन सत्य होगा। भोजराज आने वाले हैं। हमें प्रतीक्षा करनी है।

मुञ्जदेव—चित्रे! तुम्हारे मन में भी करुणा आ गई प्रतीत होती है। हमें अपने पथ पर अग्रसर होने दो।

चित्रांगदा—दासी को मोह नहीं है, उसकी समस्त सज्जा प्रस्तुत है—देव का अनुसरण करने के लिए। देव के पश्चात् दासी इस धरती पर न रहेगी देव।

मुञ्जदेव—देवी, धन्य हो तुम! तुम्हारा त्याग स्तुत्य है। तुम्हे यह दण्ड किसने दिया?

चित्रांगदा—जब पुरुष अग्रणी है तो नारी उसकी अनुगामिनी। देव ही का अनुकरण तो कर रही हूँ।

मुञ्जदेव—(महामात्य को सम्बोधित करके) रुद्रादित्य! कितना विलम्ब है? अरुणिमा निरभ्र आकाश पर आच्छादित हो जाना चाहती है।

रुद्रादित्य—देव, प्रस्तुत है।

मुञ्जदेव—साधु, रुद्रादित्य आपका धैर्य, आपका सयम। चिता में अग्नि जागृत करो। विलम्ब न करो। कहाँ है अन्य सामग्री? कर्पूर, घृत आदि से चिता प्रज्ज्वलित हो उठे। क्षण भर मे धू-धू करके जल उठे वह। होम कर दो उसमें समस्त हव्य। चिता का प्रचण्ड रूप, प्रलयकारी महाप्रलय का रूप दिखाई दे। रुद्रादित्य हम उसका स्वागत करने आ रहे है।

[मुञ्जदेव आगे बढ़ते हैं, सब रोकते हैं, गम्भीर मुद्रा से चलते हुए, हाथों के संकेत से सबको रोकते जाते हैं, चारों ओर करुणा, कातरता और रुदन-स्वर ध्वनित होता है। चिता प्रज्ज्वलित हो उठती है। मुञ्जदेव गम्भीरतापूर्वक आगे बढ़ते जाते हैं। चिता की भयंकरता से चारों ओर कुहराम-सा मच जाता है। सब पुकार उठते हैं—'त्राहिमाम् देव,' त्राहिमाम्'। चिता निकट होती जाती है। उपस्थित समुदाय रो उठता है, करुणा फूट पड़ती है। मुञ्जदेव 'ओ नम शिवाय', 'ओ नम शिवाय' की ध्वनि को गम्भीर करते हैं। नेपथ्य में सैनिक प्रयाण-वाद्य बज उठते हैं।]

रुद्रादित्य—देव का अभिनन्दन कर लूँ एक बार। मेरी साधना अधूरी रही जा रही है देव।

मुञ्जदेव—महामात्य की साधना पूर्ण होगी, किन्तु हमारे अभियान के पश्चात् ही। दिशाएँ और उनके अभिरक्षक साक्षी रहें।

[मुञ्ज सबसे विदा लेने का उपक्रम करते हैं। सहसा वत्सराज आ पहुँचते हैं, उनका श्वास भरा है, वे शब्द उच्चारण नहीं कर पाते, संकेत से ठहरो का मन्त्र देते हैं। उनके पीछे राजकुमार भोज आ-उपस्थित होते हैं। सब कुतूहलवश उधर देखते हैं। भोज द्रुतगति से मुञ्जदेव के समीप पहुँचकर चरण-स्पर्श करना चाहते हैं। मुञ्जदेव उन्हें उठाते हुए वक्षस्थल से लगा लेते हैं। जन-समूह में प्रसन्नता की झलक आलोकित हो जाती है। 'मालवेन्द्र की जय', 'भोजराज की जय', 'अवन्तिका

की जय', 'मालवाना जय' आदि जय-घोष से गगन-
मण्डल आच्छादित हो जाता है।]

मुञ्जदेव—(हर्षातिरेक में) आप लोग युवराज भोजराज की जय कहे।

[उपस्थित समुदाय 'युवराज भोजराज की जय'-ध्वनि
घोषित करते है। समस्त वातावरण परिवर्तित
होता है। हर्ष की लहरें उमड पडती है।
वाद्यो की ध्वनि प्रबल हो
उठती है।]

[पट परिवर्तन]

दूसरा दृश्य

काल—पूर्ववत् ।

स्थान—वही पूर्वांक के तीसरे दृश्य के समान मन्त्रणा-कक्ष ।

(तैलगण-नरेश तैलपराज, मृणालवती, युवराज सत्याश्रय, महासामन्त भिल्लमराज, यथा स्थान बैठे हैं । मालव पर वार्ता चल रही है । समय मध्यान्ह ।)

तैलपराज—महासामन्त ! सुना है मुञ्जदेव अवन्तिका का युवराज-पद सिन्धुल के पुत्र भोज को प्रदान कर स्वय चिता में प्रवेश कर चुके हैं ।

भिल्लमराज—यह सत्य है कि भोजराज युवराज-पद पर प्रतिष्ठित हो गये है, किन्तु उत्तरार्व निराधार है, मिथ्या है ।

मृणालवती—(सस्मित) मुञ्जदेव सन्यास लेंगे । तप-निष्ठ जीवन व्यतीत करना चाहते हैं । चलो, एक सकट टलने को तो हुआ ।

भिल्लमराज—इतना सरल नही बहिन ? सकट कटक है । मुञ्जदेव दिग्विजय करना चाहते हैं ।

तैलपराज—दिग्विजय ! (साश्चर्य) उसने उत्तरापथ में चित्तौड का पर्वतीय प्रदेश तथा आहाड अधीन कर लिये है ।

पूर्व के कलचुरि-नरेश युवराजदेव को परास्त कर उनकी राजधानी त्रिपुरी को अपने हस्तगत कर लिया है। कर्नाट, केरल और चोल नरेशो ने तो उसका आधिपत्य पहले ही स्वीकार कर लिया है। अब दिग्विजय किस ओर होगी, महासामन्त ?

भिल्लमराज—उनकी महत्वाकाक्षा प्रवल है। मुञ्जदेव समस्त भारतवर्ष में अपनी विजय-दुन्दुभि बजाना चाहते है। उत्तरापथ से दक्षिणापथ तक, पश्चिमी तट से सुदूर पूर्व तक।

मृणालवती—महासामन्त, आततायी की शक्ति ध्वस करने पर ही शान्ति स्थापित हो सकती है। जव तक मुञ्जदेव का गर्व गलित नही हो सकता, तैलपराज की पृथ्वीवल्लभता सार्थकता नही हो सकती। इस विवाद को स्पष्ट करने से ही कुछ बनेगा। मुञ्जदेव को उसके असत्य का भान कराना होगा। यदि एक वार हमारे समक्ष आ जावे तो उसे दिग्विजय का रसास्वादन उपलब्ध हो।

भिल्लमराज—(सव्यग) तैलगणराज का तो कई बार साक्षात्कार हुआ है। इस वार वहिन मृणालवती भी चलें युद्ध-भूमि में।

तैलपराज—(सरोप) महासामन्त, अब की वार हम पुन साक्षात्कार करेगे उससे और आप देख सकेंगे तैलगण की कृपाण में पानी है।

महामात्य—तैलगण उसे जीवित ही लावेंगे। एक वार हम भी तो देखें उस दिग्विजयी को। देव हमें युद्ध-भूमि में जाने का अवसर ही नही देते।

भिल्लमराज—महामात्य, अब आपकी अवस्था युद्ध-भूमि के योग्य नही रही। हम उन्हें सुरक्षित ही लायेंगे। तैलगण-वासी भी तो परिचय प्राप्त करें उनसे।

महामात्य—तैलगणवासी परिचय प्राप्त करें, क्या अभिमत है भिल्लमराज ?

मृणालवती—(सरोष) हम समझती हैं इसका अभिप्राय। तैलगण उसका स्वागत करे ? क्यों भिल्लमराज यही न ? (सदर्प) भिल्लमराज, तैलगण स्वागत करेगा। उस वीर का अवश्य स्वागत करना चाहिये ! तैलगण की धूलि कुंकुम होगी। ढेले-ककडियां पुष्प होगी !

भिल्लमराज—तैलगण-वाहिनियो की शक्ति हमें मालूम है। छः-छः वार पीठ दिखाकर आई है। उन्होंने मुञ्जदेव की कीर्ति को द्विगुणित किया है। समरागण-विमुख होकर मालवियो ने मुंह छिपाना नही सीखा।

तलपराज—महासामन्त, मर्यादा में रहें, सयम से काम लें।

भिल्लमराज—तैलपराज क्षमा करें। हमें अपनी परवशता का ध्यान न रहा।

मृणालवती—भिल्लमराज, तुम तैलगण के महासामन्त-पद पर प्रतिष्ठित हो। अपनी प्रतिष्ठा का भी तो ध्यान रखना चाहिये।

भिल्लमराज—(एक दीर्घ निश्वास के साथ) हां, हम भूल गए थे कि हम यहां स्वतन्त्र नही है, हमें विगत इतिहास की स्मृति हो उठी थी।

मृणालवती—समरांगण में आपको अपना कर्त्तव्य याद रहेगा ? कहीं वहाँ भी शत्रु के गीत न गाये जाने लगें।

भिल्लमराज—वहिन मृणालवती, सन्देह को जन्म न दें। हम क्षत्रिय हैं। क्षत्रिय अपना कर्त्तव्य समरांगण में ही ठीक-ठीक समझता है। वहाँ शत्रु—शत्रु है, एतरेय स्थानो पर शत्रु के गुण मित्रवत् देखने चाहिये।

तैलपराज—यथेष्ट, हम सन्तुष्ट हुए।

[परिचारिका का प्रवेश]

परिचारिका—(नत मस्तक) देव, अभय मिले। अवन्तिकानाथ की ओर से सन्धि-विग्राहक पधारे हैं।

[सब सकौतूहल देखते हैं]

तैलपराज—(साश्चर्य) सन्धि-विग्राहक ! आने दो।

[परिचारिका नत मस्तक पीछे की ओर चलकर जाती है]

मृणालवती—तैलपराज ! मुञ्ज का राजदूत ! आने का हेतु क्या हो सकता है ?

तैलपराज—(सकुन्चित-सा) तैलगण में रण-मंत्रणाएँ चल रही हैं। सम्भव है, हमारी गोपनीयता स्थिर न रह सकी होगी।

[सन्धि-विग्राहक का प्रवेश। एक तरुण व्यक्ति। मुख-मुद्रा पर ओज और गम्भीरता है। गति गौरवशालिनी है।

वह इतस्तत दृष्टि डालकर तैलपराज की ओर देखता है]

विग्राहक—(अभिवादनपूर्वक) तैलगणराज हम परमभट्टारक, परमेश्वर, पृथ्वीवल्लभ, मालवेन्द्र, नरेन्द्रदेव, मुञ्जदेव, अवन्तिकानाथ की ओर से उपस्थित हुए हैं।

तैलपराज—(बैठने के लिये एक मच की ओर सकेत करके) बैठिये। कहिये क्या संवाद है ? नृपति कुशल से तो है ?

[सन्धि-विग्राहक बैठते हुए]

विग्राहक—हाँ, कुशलपूर्वक है।

तैलपराज—और युवराज भोजराज भी ?

विग्राहक—हाँ, वे भी।

तैलपराज—(सव्यग) सुना था, मुञ्जदेव ने चिता में प्रवेश कर लिया था। हमने तो इसे निराधार ही समझा था।

विग्राहक—देव ने यथेष्ट अनुमान लगाया। यो तो कुछ कुचक्र चलते ही रहते हैं, निराधार बातें उठती ही रहती हैं। अस्तु, छोड़िये इस प्रसग को। हम यहाँ उपस्थित हुए हैं, उसका कारण देव ने नहीं पूछा। हम स्वय स्पष्ट कर देते हैं। स्थूनाधिपति भिल्लमराज आपके यहाँ हैं। हम उनसे परिचय प्राप्त करने को उत्सुक हैं।

तैलपराज—भिल्लमराज यही हैं। तैलगण के महासामन्त। (भिल्लमराज की ओर सकेत करके) भिल्लमराज! नवागन्तुक परिचय चाहते हैं।

भिल्लमराज—(खड़े होकर) देव, हम उनका स्वागत करते हैं।

[सन्धि-विग्राहक अभिवादन करके]

विग्राहक—हम उपकृत्य हुए। भिल्लमराज, हमने आपसे यहाँ मिलकर अनौचित्य किया है, एतदर्थ हम क्षमा चाहते हैं।

तैलपराज—हमने क्षमा-दान दिया। भिल्लमराज तैलगण के महासामन्त हैं। अपना निवेदन यहीं कहो।

विग्राहक—यथेष्ट! तैलगण की परिपाटी उज्जयिनी से भिन्न है। हम आपके समक्ष ही अवन्तिकानाथ का आदेश स्पष्ट करेंगे। भिल्लमराज! अवन्तिकानाथ सह्याद्रि-स्थित कैलाश-दर्शन करना चाहते हैं। यह प्रदेश आपके राज्यान्तर्गत है।

भिल्लमराज—(प्रसन्नता प्रदर्शित करते हुए) हम स्वागत करेंगे।

मृणालवती—भिल्लमराज, हर वस्तु को क्रीडा-कौतुक न बना लें। स्यूनप्रदेश स्वतन्त्र है, यह हम मानते हैं, किन्तु उसका संरक्षण तैलगण के अधीन है। उसका उत्तर तैलपराज की सहमति से दिया जाना चाहिए।

भिल्लमराज—(विषादपूर्वक) हम यहाँ महासामन्त हैं, स्यून में हम स्वाधीन हैं।

तैलपराज—महासामन्त का कथन यथेष्ट है किन्तु यह देखना हमारा भी कर्त्तव्य है कि किसी बात से हम पर, तैलगण की राजनीति पर, प्रभाव तो नहीं पड़ता। मुञ्जदेव तैलगण

के शत्रु हैं। तैलगण-सरक्षित प्रदेश में शत्रु-प्रवेश एक गम्भीर अर्थ का सूचक है। क्या सन्धि-विग्राहक महाशय स्पष्ट कर सकेंगे, इसका हेतु। मुञ्जदेव की इच्छा कैलाश-दर्शन की है अथवा अन्य कुछ रहस्य है।

विग्राहक—देव, (गम्भीरतापूर्वक) रहस्य से तो हम सम्बन्धित नही।

मृणालवती—क्या हम मालूम कर सकते हैं कि मुञ्जदेव का कैलाश-मोह क्यो जागृत हुआ है ?

विग्राहक—यह मोह केवल मालवेन्द्र तक ही सीमित नही। प्रत्येक कलाविद् एलापुर की लोक-भावनामयी गुफाओ से मोहित है। यह जगती का एक महान् आश्चर्य है। इसकी महत्ता को तैलगण नही समझ सकता। मालवी उसकी महानता पर मर मिटना जानते हैं। यह प्रदेश स्वतन्त्र रहा है। इसके मार्ग किसी व्यक्ति विशेष के लिये अवरुद्ध नहीं रहे, युग-युग से वे खुले हुए हैं, और अब तैलगण मनुष्य की उस महान् कला को अवगुण्ठन में रखना चाहता है। उपासना से ही कला जीवित रह पायेगी। कला पर नियन्त्रण—वह तो उस पर धूलि डालता रहेगा।

मृणालवती—उसमें कोई नवीनता नही, कोई आकर्षण नही। फिर हृदय द्रवित क्यो हो जाता है, मानव का ?

विग्राहक—देवी की दृष्टि में कला प्रतिष्ठित नही हो पाई है। देखा है आपने उस दिव्य छटा—अलौकिक कला को। मनुष्य ने लाघवता को किस प्रकार संजोया है। एक ही विशाल

पर्वत-खण्ड को काट-छाँटकर मन्दिर का रूप दिया है। इस देव-मन्दिर में प्रतिष्ठत शिव को अजस्र जल-धारा, निर्झर से प्रस्रवित होकर, शतियों से सिंचत कर रही है। आप इसकी महत्ता की गणना नही कर सकते, न करें। मालव ने इसे समझा है। इस पर किसी का नियत्रण न रहे। स्वर्ग-भूमि, देवाधिदेव शिव का दर्शन सुलभ हो, मानव मात्र के लिए।

मृणालवती—हो सकता है ऐसा, और ऐसा ही होगा। किन्तु मालवी जनो के लिये उसके मार्ग अवरुद्ध है और रहेगे।

विग्राहक—देवी कला स्वतन्त्र है, वह नियत्रण मे कब रही है? कैसे रहेगी? सह्याद्रि प्रदेश-स्थित अजन्ता और एलापुर की कला विश्व में आलोकित है। सच्चा साधक देश-काल के बन्धन तो स्वीकार नही करता।

तैलपराज—वह हमारे सरक्षण में है।

विग्राहक—यह तो भ्रम है, बंदी कल्पना।

मृणालवती—नवागन्तुक, कल्पना नही यह तो सत्य है।

विग्राहक—तब हमारा निर्णय भी सुनें। मालव स्यूनदेश को स्व-सरक्षण मे लेना अभीष्ट समझेगा। मालव वाहिनियां उन पर अपना नियन्त्रण करेंगी। मालव नष्ट हो जायगा, किन्तु स्यून प्रदेश की कला पर चली आई सन्तान

स्वतन्त्रता पर तैलगण की कलुपित छाया न पडने देग
यह है सत्य। इसे सुन लेना।

मृणालवती—सुना हमने। तैलगण की लौह-शृंखलाएँ तुम्हारे मुञ्ज को बाँधकर ही उन्हे उस प्रदेश का पर्यटन करायेंगी।

विग्राहक—देवी, तैलगण का निरन्तर प्रभाव विस्तृत न करें। मा महान् की समर-वाहिनियो की शक्ति प्रबल है।

तैलपराज—हम संघर्ष लेंगे उनसे। प्रतिकार-भावना जागृत तैलगण में।

विग्राहक—हम स्थूनाधिप भिल्लमराज से पूछना चाहते है, उन अभिमत क्या है।

[भिल्लमराज कुछ कहना चाहते है, किन्तु मृणाल उन्हे रोककर]

मृणालवती—स्थूनराज का अभिमत तैलगण से भिन्न नही सकता।

तैलपराज—भिल्लमराज, सन्धि-विग्राहक आपके अतिथि है। आ प्रासाद में परिधि में रहेगें। हम भविष्यत् की प्रती करेंगे।

भिल्लमराज—(साश्चर्य) श्रीमान् का अभिमत ?

तैलपराज—महासामन्त इन्हे अपने नियन्त्रण में रखे।

भिल्लमराज—यह नीति-विरुद्ध है।

तैलपराज—होगा, हम शक्ति के उपासक है।

विग्राहक—तैलपराज, राजनीति में मर्यादा का उल्लघन करना जानते है।

तैलपराज—सन्धि-विग्राहक अपना नाम प्रकट करें ।

विग्राहक—मालवेन्द्र की परिषद् में हम कवि पद्मगुप्त की सञ्ज्ञा से सम्बोधित किये जाते रहे हैं ।

भिल्लमराज—कवि पद्मगुप्त (आभार प्रदर्शित करते हुए) अहोभाग्य ! कवि पद्मगुप्त का आतिथ्य ।

मृणालवती—भिल्लमराज, भावना से कर्त्तव्य ऊँचा है ।

भिल्लमराज—(स्वीकारोक्तिपूर्वक) देवी ।

(पट-परिवर्तन)

तीसरा दृश्य

काल—पूर्ववत् ।

स्थान—भिल्लमराज के प्रासाद का एक सुव्यवस्थित कक्ष ।

(कक्ष में यत्र-तत्र आधार-स्तम्भों पर अजन्ता तथा एलापुर की चित्रकला तथा मूर्तियों से सम्बन्ध रखती हुई चित्र-फलको पर अंकित चित्र तथा मूर्तियाँ रखी हैं। एक षोडषी अपनी समवयस्क बाला के साथ एक चित्र-फलक देख रही है। चित्र किसी तपस्विनी का प्रतीत होता है। समय मध्याह्न के पश्चात्)

[भिल्लमराज तथा पद्मगुप्त का प्रवेश। नवागन्तुक को देखते ही विस्मयपूर्वक दोनों एक कक्ष की ओर हटने का उपक्रम करती हैं, भिल्लमराज उन्हें सम्बोधित करते हुए]

भिल्लमराज—काचनमाला, सुलेखा ! अवन्तिका से अतिथि आये हैं।

काचनमाला—वाक्पतिराज के प्रदेश से ?

[काचनमाला और सुलेखा दोनों हाथ जोड़कर अभिवादन करती हैं, कवि पद्मगुप्त भी प्रत्युत्तर में वैसा ही अनुकरण करते हैं।]

भिल्लमराज—हाँ, अपने अतिथि रहेंगे।

कांचनमाला—कब पधारे श्रीमान् ?

कवि पद्मगुप्त—आज ही आया हूँ।

कांचनमाला—अतिथिदेव, कल्याणी में आकर प्रसन्न प्रतीत नही होते। विषाद-रेखाएँ मुख-मुद्रा पर प्रस्फुटित हो रही हैं।

पद्मगुप्त—ऐसा तो कुछ नही। सम्भावना है मार्ग-श्रम झलक उठा हो।

भिल्लमराज—बैठिये, कवि-श्रेष्ठ।

[बैठते हैं]

भिल्लमराज—सुलेखा, ला शीतल पेय तो ला।

कांचनमाला—(सुलेखा से जल-पात्र लेती हुई) ला मुझे दे।

[जल-पात्र कवि की ओर बढाती हुई]

कांचनमाला—ग्रहण कीजिये कवि महाशय।

[काचनमाला से जल का पात्र लेकर पीते हैं और रिक्त पात्र देते हुए]

पद्मगुप्त—बडा ही मधुर और शीतल है पेय। हाँ, तो महासामन्त, सुना है तैलंगण में शुष्कता ही शुष्कता का साम्राज्य है। यहाँ कवि-समुदाय होगा ?

काचनमाला—यहाँ, (सहास्य) तैलगण में, इस राज्य की भाग्य-विधात्री देवी मृणालवती हैं। यहाँ मृणालवती का इतना

प्रभाव है कि तैलगण और मृणालवती दो भिन्न वस्तुएँ नही। तैलगण को मृणालवती कहें तो अतिशयोक्ति नही।

पद्मगुप्त—तब यहाँ का वातावरण नीरस होगा ! यहाँ रस, काव्य, कला, सौंदर्य का मूल्य क्या है ?

भिल्लमराज—यहाँ सब वर्जित है।

पद्मगुप्त—इसका हेतु ?

भिल्लमराज—वही मृणालवती। जिनका समस्त जीवन वैधव्य की काली घटाओ से परिवेष्ठित रहा है।

काचनमाला—मृणालवती में जो न हो थोडा है।

भिल्लमराज—सुलेखा जा, देवी को तो सूचित कर।

[सुलेखा का प्रस्थान]

पद्मगुप्त—तब यहाँ शेष क्या रहा ?

काचनमाला—त्याग, वैराग्य और शान्ति।

भिल्लमराज—कवि महाशय, हम तो इस परिधि को लाँघ चुके हैं। हमारे जीवन में रस और कवित्व तो कल्पना-लोक की बातें हैं।

[भिल्लमराज की महिषी लक्ष्मीदेवी का प्रवेश। लक्ष्मीदेवी को देखकर कवि पद्मगुप्त अभिवादन करते है। देवी उसका प्रत्युत्तर देकर भिल्लमराज के समीप वाले मच पर बैठती है।]

भिल्लमराज—देवी, कवि पद्मगुप्त, अवन्तिका-निवासी।

लक्ष्मीदेवी—धन्य भाग्य ! आपके दर्शन हमें प्रिय हुए।

भिल्लमराज—वाक्पतिराज ने हमारा पक्ष समर्थन किया है । उनका मत है स्यूनदेश तटस्थ प्रदेश बना रहे और हम उनके स्वतन्त्र शासक ।

लक्ष्मीदेवी—हम इस उदार भावना से उपकृत हुए ।

भिल्लमराज—किन्तु देवी तैलपराज ने इसका उत्तर युद्धक्षेत्र में देना अभीष्ट समझा है ।

पद्मगुप्त—देवी, मालवेन्द्र कला और सौंदर्य के पुजारी है । प्रकृति उनकी सहचरी है । वाणी पर सरस्वती विराजती है । अजन्ता और एलापुर प्रकृति तथा हस्तनिर्मित कला-सौंदर्य के केन्द्र है । मालवगण उसका उपयोग नही कर सकते । इसी नियत्रण को हटाने का मत्र लेकर हम आये थे, किन्तु निराश होना पड़ा ।

कांचनमाला—तब आप क्या कहेगे जाकर कला-सम्राट् मुञ्जदेव से ?

पद्मगुप्त —इसका उत्तर भविष्य देगा । हम विवश है ।

कांचनमाला—आपकी विवशता का हेतु !

पद्मगुप्त—हमारी परिधि आपका प्रासाद बनादी गई है, हम इसी में चल-फिर सकते है ।

लक्ष्मीदेवी—तब नाथ, इसमें आपको सहयोग नही देंगे । आप चाहे तो कविराज को मुक्त कर सकते है ।

भिल्लमराज—देवी, क्या हम स्वतन्त्र है ? अपनी परवशता की कहानी नही जानती हो । फिर हम वचन-बद्ध भी तो है । क्षत्रिय होकर स्व-धर्म से वंचित नही ।

लक्ष्मीदेवी—यथेष्ट देव, किन्तु स्यूनदेश को अवसर मिल रहा है। स्वातन्त्र्य-स्थापना का आधार एक सबल पक्ष प्रदान करता है तो क्यो न हम उसका लाभ उठाएँ।

भिल्लमराज—देवी स्यून और तैलगण एक सन्धि में सन्निद्ध हो चुके है। हम उस लेख पर मसि नही पोत सकते।

लक्ष्मीदेवी—(सगर्व) यह दुरभि-सधि है, हमें अपना अपमान न भुला देना चाहिए। यह छलना और प्रतारणा की सीमा है, हमें पूर्वकाल का स्मरण हो आता है, तो हमारी नसो में उष्ण रक्त प्रवाहित होने लगता है। क्या वह उष्णता श्रीदेव की कोमल नसो में प्रतप्त नही होती। ठुकरादें इस सधि को। चूर्ण कर डालें उस अभिलेख को। राजनीति में नित्य आलेख लिखे जाते है, तो नित्य विगाडे भी जाते है। जव एक की छलना प्रस्फुटित होती हो तो क्यो नही दूसरा उसका प्रतिकार ले। देव की नसें फूल गई है, उनमें कायरता भर गई है, तव क्या कहे ?

पद्मगुप्त—भिल्लमराज! आप चाहें तो भविष्य-परिवर्तन भी कर सकते है। आपमें वह क्षमता है, वह शक्ति विद्यमान है। मालवेन्द्र स्यून के लिये सव कुछ करने को उद्यत है।

भिल्लमराज—कवि पद्मगुप्त, स्मरण रहे आप स्वतन्त्र नही है, फिर हमारे अतिथि।

कवि पद्मगुप्त—भिल्लमराज! यद्यपि हम तैलगण के नियन्त्रण मे है। स्वाधीन समीर पर से हमारा अधिकार अपहृत

कर लिया है। किन्तु फिर भी हम कहेंगे राष्ट्र-हित के लिये अनेक त्याग करने होते है । राजनैतिक चालो में कुचालें भी स्थान रखती रही है। आज से नही, युग-युगान्तर से ।

भिल्लमराज—यथेष्ट कवि महाशय, किन्तु भिल्लमराज और उनका स्यूनदेश कुचालो को कायरता की सज्ञा देता रहा है । जब कुचक्र इस धरती पर से उठ जायेंगे तब क्या विशुद्ध राजनीति श्वास न लेती रहेगी । पाप-कुम्भ परिपूर्ण हो जाने पर उसका विनाश स्वत: निश्चित है । जब हमें निमित्त बनना होगा, कोई न कोई दैवी शक्ति हमें प्रेरणा प्रदान करेगी और हम अग्रणी होगें । हमने तैलगण का लवण उपभोग में लिया है, यहाँ का अन्न-जल हममे विद्ध हो चुका है। प्रतारणा जब उसे शुष्क कर देगी तभी हम अपना कर्त्तव्य समझ सकेंगे । आज तो हम पर पराधीनता मँडरा रही है । इससे अधिक हम कुछ नही सोचते । विधि के अक जब परिवर्त्तित होगे हम स्वत. खडे हो जायेंगे । हाँ, तो देवी अतिथि का आतिथ्य भी करना भूल रही हो। स्वातन्त्र्य-भाव प्रबल हो गया है ?

लक्ष्मी देवी—क्षमा करें देव, स्यून के नाम से ही कुछ ऐसा लगाव बना हुआ है कि जब भी उसकी चर्चा होती है, हमारा मन विह्वल हो उठता है ।

भिल्लमराज — क्या करें देवी, भाग्य से संघर्ष कौन ले ? अच्छा चलो। काचनमाला तुम यहीं रहना। अतिथि को एकान्त अनुभव न हो।

[भिल्लमराज तथा लक्ष्मीदेवी का प्रस्थान]

पद्मगुप्त—तव यहाँ का नीरस वातावरण तुम्हे क्षुब्ध नही करता क्या ?

कांचनमाला—कवि आपका जीवन कवित्वमय है। नीरसता में भी सरसता प्रादुर्भूत कर देते हो, प्रकृति से द्रोह भी आपका कवित्व-ले उठता है। मै तो शुष्क वातावरण में पनप रही हूँ। सीता का तप शील जीवन सुखद था। सच पूछो तो उसी जीवन में उस महातपस्विन् को आनन्द मिला और जब उसने सरस जीवन में पदार्पण किया, उसे पीड़ित होना पड़ा।

पद्मगुप्त—तव वह तप में रम नही पाती थी, तुम यह कहना चाहती हो ?

काचनमाला—मेरा अभिप्राय यह तो नहीं था। आपका रस क्या है ? कवि का रस क्या अर्थ रखता है ? मै नहीं समझती। सरसता क्या है ? यह भी मैं नही जान सकी हूँ। मुझे तो यही दीक्षा मिली है कि विश्व में सर्वत्र नीरसता है, सरसता चचल है, नीरसता शान्ति है, और शान्ति निश्चल।

पद्मगुप्त—(साश्चर्य) तब तुम रसिकता क्या है नही समझती।

काचनमाला—मेरे जीवन में ज्योत्सना त्याज्य है, हेय है। मुझे तो त्याग-वृत्ति का ही उपादान करना है।

पद्मगुप्त—इस दीक्षा का प्रवर्त्तक कौन भाग्यशाली है काचनमाला ?

कांचनमाला—मृणालवती।

पद्मगुप्त—मृणालवती, अनुभूतिहीना मृणालवती।

कांचनमाला—कवि, कलंकित करने वाले पदार्थों की अनुभूति ?

पद्मगुप्त—कौन कलंकित करता है ? क्या काव्य-कल्पना कलंकित करते हैं ? काचनमाला ! प्रेम कलंकित करता है ? तब कवि कहेगा यह कलंक शुष्क और नीरस जीवन से श्रेष्ठ है।

[भिल्लमराज का प्रवेश]

भिल्लमराज—पधारिये कवि महाशय !

[प्रस्थान]

[पट परिवर्तन]

चौथा दृश्य

काल—वही पूर्ववत् ।

स्थान—पूर्वोक्त तीसरे दृश्य के अनुसार । समय मध्याह्न ।

(तैलपराज, मृणालवती, सत्याश्रय, महामात्य, आदि यथा-स्थान बैठे हैं । मन्त्रणा चल रही है । भिल्लमराज बाद में आते हैं ।)

तैलपराज—बहिन मृणालवती के आशीर्वाद से हम विजयी हुए हैं मुञ्ज को बन्दी बना लिया गया है । हमारी परिषद् अब उसका न्याय करेगी ।

महामात्य—मुञ्ज को कठोर दण्ड देकर उसे हत-श्री करना चाहिए ।

सत्याश्रय—उसे मृत्यु-दण्ड देना चाहिये ।

[भिल्लमराज का प्रवेश]

भिल्लमराज—(साश्चर्य) मृत्यु-दण्ड, किसकी वाणी ने कहा ? कौन कहता है मृत्यु-दण्ड ? क्या तैलगण इतना भीरु और डरपोक हो गया है कि उसका विधान मुञ्जदेव, अवन्तिका-नाथ के लिए मृत्यु-दण्ड की व्यवस्था करे । अनुचित, देव, अनुचित । परिषद्-जनो हमारा विनम्र निवेदन है, वीर का वीरतम स्वागत हो, यही तो वीरता है ।

महामात्य ! मुञ्जदेव निस्सन्देह अवध्य हैं। अवन्तिका-नाथ वाहर उपस्थित हैं । उनके भाग्य का निर्णय परिषद् करे, किन्तु न्याय-दण्ड का आधार न्याय के अनुकूल ही हो।

मृणालवती—महासामन्त ! मुञ्जदेव को उपस्थित करें । दण्ड-विधान अभियुक्त को प्रकम्पित कर दे तब ही श्रेष्ठ रहेगा।

भिल्लमराज—यथेष्ट देवी !

[महासामन्त का वहिर्गमन, मुञ्जदेव लोह-शृंखलाओं में आवद्ध, हाथ पीछे की ओर वॅंधे हुए, गम्भीर गति से परिषद्-भवन मे प्रवेश करते हैं । आठ सैनिक हाथो में भल्ल लिए हुए हैं । भिल्लमराज् उनके साथ ही साथ आकर अपना स्थान ग्रहण करते हैं । मुञ्जदेव इधर-उधर चारो ओर देखकर, परिषद्-भवन को देखते हैं । उनकी दृष्टि तैलपराज के समीप मञ्च पर बैठी हुई मृणालवती पर पडती है । वे वक्रदृष्टि से उसे देखते हैं । मृणालवती का रोष वढ जाता है ।]

तैलपराज—महासामन्त, मुञ्जदेव लोह-शृंखला में आवद्ध हैं। उन्हें शृखला-भार से मुक्त कर दें।

मुञ्जदेव—तैलपराज की अनुभूति जागृत हुई प्रतीत होती है । अवन्तिका के इतिहास के स्वर्णिम पृष्ठों में तैलगण की वीरता पर काली स्याही पोती हुई है । तैलपराज के इन्हीं हाथों ने, अपनी पराजय की कहानी लिखी है। अवन्तिका ने तैलपराज सरीखे कायर पुरुष को लोह-शृखला

पहनाना भी अपना अपमान समझा । आपने हमें गौरवान्वित किया है ।/

तैलपराज—मुञ्जदेव ! आप तैलगण-परिषद् में हैं, इस बात का भान रहे । ज्ञात होता है शृंखला-भार ने मस्तिष्क में विशृंखलता उत्पन्न कर दी है, महासामन्त भिल्लमराज ! लौह-शृंखला-मुक्त कर दें उन्हे ।

[महासामन्त भिल्लमराज उठकर शृंखला की कुञ्जियाँ निकालकर सैनिको को देते है, सैनिक शृंखला को खोल देते है । भरकम शृंखला कड-कड शब्द के साथ प्रागण पर गिरती है । भिल्लमराज स्व-स्थान पर बैठते है । मुञ्जदेव सगर्व तनकर खडे रहते हैं]

मृणालवती—कहिये मुञ्जदेव ! अवन्तिका की स्मृति आती होगी । स्यूनदेश अब किसके अधीन रहा ? सह्याद्रि-स्थित कैलाश-दर्शन अभीष्ट हो तो व्यवस्था की जाय । असहाय पद्मगुप्त भी आपकी प्रतीक्षा कर रहा है ।

मुञ्जदेव—मृणालवती, हम तो कैलाश-दर्शन कर आये । सह्याद्रि पर मालव-समर-वाहिनियो का दृढ सरक्षण रहेगा । उस पर या तो मालव-ध्वज ही फहराता रहेगा अथवा स्यूनदेश के यादवेन्द्र ही अपनी पताका स्थिर रख सकेंगे । कला की अवहेलना करने वाला तैलगण उस पर अपना प्रभुत्व रख सके, यह असम्भव है । सह्याद्रि पर अब भी अवन्तिका की विजय-वैजयन्ती प्रसारित हो रही है । तैलगण का एक-एक कक्ष इसे अनुभव कर

रहा है। और रहे कवि पद्मगुप्त, वह अपना कर्म-क्षेत्र तैलगण में विस्तीर्ण कर रहे हैं।

मृणालवती—मुञ्जदेव तो यहाँ वन्दी हैं। पद्मगुप्त अवन्तिका के लिये कराह रहा है। उसकी तड़प मुञ्जदेव को स्मृति प्रदान करती रहेगी।

मुञ्जदेव—हम तैलगण को गौरवान्वित करने आये है, मृणालवती।

तैलपराज—(सदर्प) और मुञ्जदेव की मृत्यु इस भूमि पर सहस्र जिह्वा होकर लपलगा रही है। तैलगण की असि-धाराएँ मुञ्ज के रक्त की पिपासु हो रही है।

मुञ्जदेव—हम उसका स्वागत करेंगे, तैलपराज! आपकी परिषद् हमें ऐसे दण्ड से गौरवान्वित करे तो। हम सुने, तैलगण-परिषद् क्या निर्णय करती है, उसके साहस को हम देखना चाहते हैं।

तैलपराज—हम परिषद् से अनुरोध करेंगे कि वह मुञ्जदेव को मृत्यु-दण्ड दे।

भिल्लमराज—तैलगणराज, यह अनुचित है। अनुचित न्याय और अनुचित विधान का समर्थन तैलगण न कर सकेगा। यदि वीरेन्द्र-शिरोमणि अवन्तिकानाथ को मृत्यु-दण्ड दिया गया तो मालव-समर-वाहिनियों का एक-एक सैनिक पुन तैलगण की ईंट से ईंट वजा देगा। मालव-लौह-शृंखला से भय-त्रस्त विदेशी शत्रु भारत-भूमि पर—हमारी मातृ-भूमि की ओर, आँख उठाकर देख तक नहीं सकते। यदि महान् पराक्रमी मुञ्जदेव की

पार्थिव देह तत्वों में विगलित हो गई तो भारत वसुन्धरा शक्ति-शून्य हो जायगी और तब इस शक्ति-विहीन धरती पर विदेशी समर-वाहिनियां आ-आकर रौरव क्रीडाएं करने लगेंगी। अतुलित सम्पदा, जिसके हम आज स्वामी बने बैठे हैं, कल हमारा अंक-पाश छोड़कर शत्रु-पर्यंकशायिनी बन जायगी। आज की सुभोग्या कल की अभोग्या बन जायगी।

तैलपराज—(उत्तेजित होकर) महासामन्त ! स्व-मर्यादा की परिधि लंघन कर रहे हैं, सरिता अपनी दिशा छोड़ रही है।

भिल्लमराज—सम्भव है, तैलपराज ! सरिता स्व-पथ परिवर्त्तित कर दे, किन्तु असीम उदधि ससीम ही रहना जानता है। उसमें क्षणिक उबाल आना स्वभाव-संगत नहीं, अप्राकृतिक है। प्रकृति से वह विद्रोह करे यह सम्भव नहीं होता।

महामात्य—क्षमा करें देव, ज्ञात होता है, तैलगण के दिन फिरने वाले हैं। उसके भाग्य को कोसा जा रहा है। भिल्लमराज महासामन्त ने तैलगण का अन्न-वायु ग्रहण नहीं किया है, क्यों ? तुम्हारी नसों में अब भी स्यूनदेश का रक्त-पानी विद्ध है ?

भिल्लमराज—महामात्य विचित्रवीर्य ! आपको अत्र यही शोभा देता है, (सगर्व) जिनकी सुदृढ़ बाहुओं ने, जिन वीर-शिरोमणि की कृपाण ने, जिस युद्ध-निर्णायक प्रवर राजनीति-पटुता ने आज के तैलगणराज को अनेक बार

जीवन प्रदान किया है, उनके प्रति तुम्हारी वाणी मे कृतघ्नता। उपकारी का उपकार न मानना कृतघ्नता है। स्यून-वाहिनियो ने यदि अपना रण-चातुर्य प्रदर्शित न किया होता तो आज का दिवस पुन उज्जयिनी की स्वर्णिम पोथी में अंकित होता।

मृणालवती—यथेष्ट ! महासामन्त कहना चाहते है कि वीर ही वीर को शक्तिहीन कर पाये है ?

महामात्य—(सगर्व) नही, भिल्लमराज यह सिद्ध करना चाहते है कि उन्होने ही महापराक्रमी मुञ्जदेव को वन्दी बनाया है।

भिल्लमराज—यह हमें प्रिय नही, किन्तु इस वात को तो स्वय देव तैलपराज जानते है। मुञ्जदेव के साथ विघटित द्वन्द्व-युद्ध को तैलगण-नरेश भूले न होगे। द्वन्द्व में पीछे हट जाने वाले वीर-शिरोमणि का सरक्षण ये निर्वल वाहुएँ ही कर सकी हैं।

तैलपराज—(सरोष) महासामन्त, महासामन्त, सयम रखना सीखो।

भिल्लमराज—देव, हम अभ्यस्त हो चुके है। बहन मृणालवती का सयम हमें प्रेरित करता रहा है, किन्तु क्षमा करें, (सगर्व) आप पर्वतीय सरिता के प्रवाह को रोक लेना चाहते हैं। दोनों हाथ मिलकर भी इस प्राकृतिक सत्य को नही बांध सकते। यह युद्ध केवल इसी हेतु रचा गया था कि अन्तिम वार तैलपराज और मुञ्जदेव स्व-शक्ति की सीमा निश्चित करें, यह निर्णायक युद्ध इसी हेतु था, कौन किसका वध करे ? हम तो समर-वाहिनियो से

जूझ रहे थे, समर-वाहिनियो का शक्ति-सन्तुलन बराबर रहा। भिल्लम ने तैलपराज को शक्ति-हीन पाया। हम मध्य में आ गये। द्वन्द्व तैलपराज मे न होकर हमसे होने लगा। मुञ्जदेव को दुहरी शक्ति से शिथिल होते देख, छलना, प्रवञ्चना ने मालवेन्द्र को घेरकर बन्दी बना लिया। यह रहा हमारा वीरत्व! तैलगण की सामरिक शक्ति! सम्भव था तैलगण का साहस-दीप—जीवन-दीप बिना स्नेह के ज्योतिशून्य हो जाता, ज्योतिर्ज्वाला निस्तेज हो जाती।

मृणालवती—भिल्लमराज, (सरोष) शान्त हो। परिषद् निर्णय देगी। एक बार हाथ मे आये शत्रु को छोडना तैलगण की राजनीति नही सिखलाती। हम जानते है, जब तक मुञ्जदेव जीवित हैं, तैलगण के परम भट्टारक तैलपराज पृथ्वी-वल्लभ नही हो सकते। उन्हें मृत्यु-दण्ड देना ही उचित रहेगा।

तैलपराज—इतना कठोर दण्ड क्यो, महासामन्त?

भिल्लमराज—देव, हम तो पुन यही अनुरोध करेंगे, मृत्यु-दण्ड अनुचित है।

तैलपराज—ठीक है, भिल्लमराज तब महासामन्त का अभिमत क्या है? स्पष्ट करें। परिषद् उस मत्र पर विचार करेगी।

भिल्लमराज—मुञ्जदेव वीर है और वीरत्व का अपमान न हो। वीर-प्रसू-जननी ने उन्हें शक्ति और बल के भण्डार मे पूरित किया है।

मृणालवती—(कठोरतापूर्वक) उन्होने तैलपराज और मृणाल की कीर्ति को कलकित किया है। उन्हे तरसा-तरसाकर मारना चाहिये।

भिल्लमराज—इसका अभिप्राय यह नही कि एक वीर के वन्दी किये जाने पर हम उसकी परवशता से विनोद करें। मुञ्जदेव भूपेन्द्र हैं। नरेश युद्ध-भूमि के अतिरिक्त सर्वत्र अस्पर्श्य है। नीति-विरुद्ध कर्म तैलगण की शुभ्र-कीर्ति-कौमुदी के लिये कलङ्क-कालिमा होगा। कुमुदिनी-नायक पर धूलि फेंकने पर हमारी ही देह धूलि-धूसरित होगी।

सत्याश्रय—महासामन्त, ये अशोभनीय विचार-वीथियाँ क्यो? एक सैनिक के लिये रण-भूमि और राज-प्रासाद समान है। शत्रु का चाहे तो शिरोच्छेद किया जाय, चाहे उसे तिल-तिल होकर मरने दिया जाय। यदि वह वीर है तो उसे इसकी चिन्ता क्यो? फिर मुञ्जदेव तो हमारे प्रवल शत्रु है।

मृणालवती—(उदासीनता प्रदर्शित करके) हमे तुम्हारा अभिमत अप्रिय नही रहा। हम महासामन्त की सहमति से सहमत है। मुञ्जदेव को उनके अनुरूप ही दण्ड देंगे। (सदर्प) मुञ्जदेव गर्व-गलित हो जायें, मुञ्जदेव की मुस्कान हत होकर उनकी मुख-मुद्रा पर मलीनता क्रीडा करती रहे। यह पर्वत-तुल्य शरीर रेणु-कणिका में परिणत हो जाय। दैव उससे रौरव क्रीडाएँ करने लगे, मृत्यु उससे अठखेलियाँ करे। तव ही मुञ्जदेव की कीर्ति

दें। स्यूनदेश तैलगण और मालव-राज्य के मध्यवर्ती रहे।

मृणालवती—महासामन्त, ऐसे असभाव्य प्रतिदान में सम्भावना पाना चाहते हैं। मालव-वाहिनियों में यदि शक्ति शेष है तो आकर ले जायें अपने मुञ्जदेव को। उनका निस्तरण इतनी सरलता से नहीं हो सकता। रहा स्यून-स्वातन्त्र्य, उस पर विचार किया जा सकता है। आप स्यून के स्वातन्त्र्य म क्या न्यूनता अनुभव कर रहे हैं? उस पर अधिकार तो आपका ही है। इसे स्पष्ट करें।

भिल्लमराज—यह तो हम पहले ही जानते थे। मुञ्जदेव के प्रति आप लोगो का जो रोष है, वह मिथ्या है। कितना सुन्दर होगा वह दिव्य दिवस जब दोनो एक-दूसरे के समीप आकर, मित्र-भाव से मिलकर, भारत वसुन्धरा को शत्रु-पीडा से उन्मुक्त करेंगे।

तैलपराज—(उस ओर अनिच्छा प्रदर्शित करते हुए) हम विचार करेंगे, महासामन्त स्यून के सम्बन्ध में कहें।

भिल्लमराज—स्यून के सम्बन्ध में तैलगणराज का नियन्त्रण ऐसा ही है। वह देश सबके लिए स्वतन्त्र कहाँ है? उसकी कला को सीमित रखना इष्ट नही है। अजन्ता और एलापुर की परम्परागत कला से कवि-गण प्रेरणा पाते हैं, वहाँ के प्राकृतिक सौन्दर्य पर वे अमर काव्य सृजन करते हैं। हमें उस पर अवगुण्ठन प्रिय नही। हम वचन-बद्ध हैं।

तैलपराज—वचन दे चुके हो, किसे ? महासामन्त क्या कह रहे है ?

भिल्लमराज—मुञ्जदेव को। जिस समय मुञ्जदेव को वन्दी किया गया था, उन्होंने कहा था, भिल्लमराज! यह कार्य तुम्हारी ही शक्ति में था। मेरी देह को छिन्न-भिन्न कर तैलंगण-राज की इच्छा पूर्ण करना, किन्तु मेरे कवियों का मार्ग अवरुद्ध न रहे। सह्याद्रि-भ्रमण उनके लिए स्वाधीन रहे। अजन्ता और एलापुर की कीर्ति को कलक मत लगने देना।

मृणालवती—(भृकुटी परिवर्त्तित करके) कुछ अपने निमित्त भी मांगते, महासामन्त।

भिल्लमराज—इसे हम अपना सौभाग्य समझते है, वहिन मृणालवती।

मृणालवती—कवि पाप-पंक में सने हुए सक्रामक ह। वसुन्धरा इनके भार से दबी जा रही है, पाप के कीटाणु तैलगण की परिधि में भ्रमण करने लगेंगे ?

तैलपराज—इससे तो और भी श्रेष्ठ वस्तुएँ ससार में है। कहिए हम उनसे पूर्ण करें।

भिल्लमराज—तैलगणराज, हमारा मानस इसे अपना सौभाग्य समझता है। आप शक्ति-सम्पन्न ह, चाहे दें, चाहे ठुकरा दें। हम अधिकार-त्याग के लिए भी प्रस्तुत हैं।

मृणालवती—ऐसा ही होगा, किन्तु तैलगण को मालव की कुकीर्ति से सुरक्षित रखना होगा। यह दायित्व भिल्लमराज स्वीकार करेंगे।

भिल्लमराज—यथेष्ट देव !

तैलपराज—महासामन्त मुञ्जदेव को वन्दी-गृह की प्राचीरो मे इतना टकराने दो कि वह अपनी हार अनुभव करने लगें।

मुञ्जदेव—भ्रम, तैलपराज, नितान्त भ्रम ! हम तो यहाँ भी अपना प्रभुत्व देख रहे हैं। मालवेन्द्र की इच्छा यहाँ भी फलवती हुई। उसे जो प्रिय था, वह उसको उपलब्ध हो चुका है।

मृणालवती—यह तो भावी ही वतायेगी।

मुञ्जदेव—मृणालवती, हम उस भावी के स्वागतार्थ प्रस्तुत है।

तैलपराज—महासामन्त, ले जाइये। तैलगरण के वन्दी-गृह की भित्तियाँ मुञ्जदेव से मिलने को चिर-प्रतीक्षित है।

मृणालवती—हमारी चिर-पोषित अभिलाषा पूर्ण हुई।

[मृणालवती सरोष मुञ्जदेव की ओर देखती है। घूरते हुए मुञ्जदेव उस पर सरस मुद्रा में कटाक्ष-पात करते हैं। मृणालवती पुन दाँत पीस कर रह जाती है। मुञ्जदेव गौरवपूर्ण गति से भिल्लमराज तथा सैनिको से घिरे चलते है।]

[पट परिवर्तन]

पाँचवाँ दृश्य

काल—वही पूर्ववत् ।

स्थान—तैलगण के महासामन्त भिल्लमराज की अतिथिशाला से लगा उद्यान-कक्ष ।

[कदम्ब वृक्ष के स्कन्ध पर एक झूला पडा हुआ है । उसके निचले काष्ठ भाग का माप पर्याप्त लम्बा-चौडा है, जिस पर काचनमाला तथा कवि पद्मगुप्त बैठे वार्तालाप में निमग्न है]

काचनमाला—कवि ! सुना है, तैलपराज मुञ्जदेव को सरलता से छोडने को तैयार नही है । यदि विधि के अक मालवेन्द्र के विपरीत हुए तो अवन्तिका का क्या होगा ?

कवि पद्मगुप्त—देवी, अवन्तिका का क्या होना है, यह तो भविष्य के गर्भ में है । हाँ, यह सत्य है कि मुञ्जदेव ने यह दुस्साहस किया है । उनका बीडा था, स्यूनदेश-स्थित सह्याद्रि का सरक्षण और उसे मालव-वाहिनियो ने सरलता से ही अधीन कर लिया था । तैलगण-वाहिनियाँ समर-भूमि से खदेड दी गई । आपके पिता-श्री ने सघर्ष लिया, किन्तु मालव-वाहिनियो से वे टकरा न सके । उन्हे पीछे हटना पडा । मुञ्जदेव विजयोन्माद

में बढते चले आए। इस बार मालव-महामात्य रुद्रादित्य भी न आ सके। निरन्तर अस्वस्थता के कारण उनकी देह जीर्ण और शक्ति क्षीण हो चली है। उन्होंने भी देव को रोका था। गोदावरी के इस पार न बढने का मन्त्र दिया था, किन्तु भवितव्यता ले आई उन्हें। कहा करते थे वे, एक बार तैलगण-प्रवेश कर, उसे देखना है। यहाँ की मिट्टी को गौरवान्वित करने की साध लिए बैठे थे। मृणालवती के रूप-सौन्दर्य को वे देखना चाहते थे।

काचनमाला—किन्तु यह साध दुष्कर रही। तैलपराज का हिया भी उतना ही दुष्कर है। यह सत्य है कि वे तैलपराज को छ:-छ बार जीवन-दान दे चुके हैं। किन्तु इससे यह अर्थ लगा लेना कि तैलपराज मुञ्जदेव को भी जीवन दे सकेंगे, भूल होगी।

कवि पद्मगुप्त—इतना कठोर हिया है तैलपराज का ! तब तो भावी अनर्थ की कल्पना से मेरा शरीर सिहर उठता है। हम मालवी इतने कठोर हृदय नही। उनमें सरसता है, सहृदयता है। हम तो भावना में द्रवीभूत होना जानते हैं। कवित्वमय वाणी और कल्पनामय जीवन में भी साक्षात् सत्य का अनुवीक्षण सीखा है हमने। कठोरता का स्थान कोमलता ग्रहण करती है। हममें रसार्द्रता है, काचनमाला। सरस जीवन अवन्तिका का चरम लक्ष्य है और हम मालवी उसे उपलब्ध कर चुके हैं। हमारे युवराज हैं, भोजराज। कवित्व की सफल मूर्ति। उनका

रोम-रोम कवि-कल्पना, कवि-प्रेरणा और कवि-अनुभूति की सजीवता धारण किये हुए है। अवन्तिका में काव्य और संगीत की वह अनवरत निर्झरिणी स्रवित होती रहती है कि रसिकता स्वयं उसमें कल्लोलमयी हो उठती है। रूप-गुण-निधान भोजराज पर यक्ष और किन्नर-बालाएँ झूमने लगती हैं। कोकिल-कण्ठियाँ सुमधुर रागिनी पर आत्म-विभोर हो जाती हैं, ऐसा है उनका मधुर गीत। साक्षात् अनग का रूप है। रति भ्रमित हो जाय—कहीं उन्हे अवलोकन करले तो।

कांचनमाला—कवि ! चित्र अंकित कर सकोगे ? लाऊँ सामग्री ? कितनी सुन्दर कल्पना है।

कवि पद्मगुप्त—कांचनमाला, यह कल्पना नहीं, यह तो उनका सत्य है। वाणी वर्णन नहीं कर पाती, उसमें शक्ति का अभाव देख रहा हूँ। रहा चित्रांकन सो तो मैं असमर्थ हूँ। हां मैं सहयोग दे सकता हूँ, तुम्हारी तूलिका को। उचित समझो तो सँभालो चित्र-फलक। अंकित कर दो उस पर नयनाभिराम छवि को।

[त्वरा से जाकर चित्र-फलक तथा अन्य सामग्री ले आती है। धरती पर बैठकर, घुटने का आधार बनाकर चित्र-फलक पर तूलिका चलाती है।]

कांचनमाला—कहो कवि, वर्णन करो उस छटा को। मैं रंग भर दूँगी उसमें। तो आरम्भ हो। कवि सुनाओ कर्ण-प्रिय वाणी।

[आत्म-विभोर हो उठती है, नेत्र मीलित हो उठते हैं]

[भिल्लमराज का प्रवेश । दोनो उठकर अभिवादन करते है]

भिल्लमराज—आइये कवि महाशय कुछ मत्रणा करनी है।

[दोनो का प्रस्थान, काचनमाला की सहेली का प्रवेश]

काचनमाला—सुलेखा !

सुलेखा—बहिन, काचनमाला !

काचनमाला—देखती है। (वल्लरी की एक पखुडी पकडकर) यह क्या है ?

सुलेखा—वल्लरी।

काचनमाला—वल्लरी। तब वल्लरी क्या चाहती है, जानती है तू !

सुलेखा—जल, मिट्टी और धूप।

काचनमाला—और ?

सुलेखा—(साश्चर्य) और।

काचनमाला—आश्रय नही सुलेखा। जल रस है, मिट्टी रस है, यह वृक्ष-पिण्ड आश्रय है, यही तो रसिकता है !

सुलेखा—(साश्चर्य) रसिकता !

काचनमाला—तू नही समझेगी सुलेखा, तू क्या जाने रसिकता क्या है। जानती है ?

सुलेखा—नही तो।

काचनमाला—नही तो, रसिकता की साक्षात् सौम्य मूर्ति !

सुलेखा—समझी, सत्याश्रय।

कांचनमाला—नहीं, सुलेखा, मालव के कवि, महाकवि।

सुलेखा—मालव के महाकवि!

कांचनमाला—भोजराज और सत्याश्रय दो व्यक्ति हैं। किन्तु अपना-अपना व्यक्तित्व है। सत्याश्रय की शरीर-गठना सुदृढ है, सौन्दर्यमयी है, किन्तु दूसरे में सौन्दर्य है, सरसता है, माधुर्य है, ओज है। मुख-कान्ति आकर्षित करती है। सत्याश्रय के दर्शन त्रास उत्पन्न करते हैं और युवराज भोजराज की कल्पना-मात्र से मन में आह्लाद हो उठता है। एक अधिकार करता है तो दूसरा हृदय का अपहरण। कह, तू ही कह, कौन श्रेष्ठ है?

सुलेखा—मैं बताऊँ? तो कहूँगी, मालव युवराज।

कांचनमाला—मालव युवराज! तूने कैसे जाना? इस उर्वरा में भी रस है? तू इस रस को क्या पहचाने? किससे सीखा तूने यह?

सुलेखा—सीखा किससे कुमारी जी! यह तरुणाई स्वत: दिशा पा लेती है। सरिता जब पर्वत से ममता त्यागकर भूतल से नेह लगाती है तब वह अपना पथ स्वत. पा लेती है। कोई मार्ग-दर्शक उसका साथ नहीं देता। उसकी प्रगति स्वयं जीवन-दायिनी बन जाती है। वह जीवन किसी से प्राप्त नहीं करती, वह तो दूसरों के लिए भी जीवन-दात्री बन जाती है और रस-पिपासु उससे रस पाते हैं

[कवि पद्मगुप्त का प्रवेश]

काचनमाला—आइये कवि महाशय! पिताश्री के साथ गोपनीय मन्त्रणा थी।

कवि पद्मगुप्त—नही, कोई विशेषता तो नही थी।

कांचनमाला—आपकी मुद्रा पर उद्विग्नता छा गई है।

कवि पद्मगुप्त—(स्वस्थ होते हुए) नही, कुछ विस्मृति हो उठी थी—अवन्तिका की।

कांचनमाला—हाँ, तो मै पूछ रही थी सरसता स्वस्थ है, निर्विकार है?

कवि पद्मगुप्त—नही क्यो! उदधि में असख्य मुक्ताएँ है और प्रस्तर-कणिकाएँ भी। पारखी मुक्ताएँ सञ्चित कर लेता है और कणिकाएँ छोड देता है। जीवन में अविकारी पदार्थ भी है और विकार-पूरित भी, किन्तु मन—स्वस्थ मन तो अपनी परख के अनुकूल प्रिय वस्तु ही पायेगा। मन पायेगा कि जितनी रत्न-मणियाँ है उन पर उसका स्वत्व हो और विकारी मन इतस्तत भटक जायगा। कहेगा, जो मिला सो ठीक, मणियाँ न सही कणिकाएँ ही सही। मन का अन्तर प्रधान होता है।

काचनमाला—तब जीवन में क्या है?

कवि पद्मगुप्त—राजकुमारी जी! जीवन में बहुत कुछ शेष है। विश्व में बहुत कुछ है। काव्य-धारा सरसता की प्रसूति है, जीवन-पथ का मूलाधार है।

[कवि के मुख पर खिन्नता दृष्टिगोचर होती है]

काचनमाला—कवि पुन. अन्यमनस्क प्रतीत होते है ?

कवि पद्मगुप्त—यहां मुञ्जदेव की राज-सभा के सदृश आनन्द नही है। हमारा हृदय तो पूर्वजो की उसी भूमि के दर्शन को लालायित हा उठता है । हमारा मन तो उसी भूमि का लौट जाना चाहेगा। "जननी जन्म-भूमिश्च, स्वर्गादपि गरीयसी" कितनी मोहक, कितनी सुन्दर, सलिल और आनन्ददायिनी है वह भूमि ।

सुलेखा—वहां क्या विशेपता थी ? मुञ्जदेव भी तो यहां वन्दी है ।

कवि पद्मगुप्त—यही तो पीडा है हमारे मानन मे। वहां शत-शत कवि सम्मिलन होता था । मुञ्जदेव की सभा रस और कविता की क्रीडा-स्थली वनी हुई थी । उसके नैसर्गिक सुख का वर्णन कौन करे ? वाणियां सामर्थ्य-शून्य हो रही है। तैलगण की इन भित्तियो में वैठकर कौन उस वसुन्धरा की गुण-गरिमा गान कर सकता है।

कांचनमाला—ऐसा क्यो है ! कवि ?

कवि पद्मगुप्त—कवि अवगुण्ठन में रहना नही जानता । वह तो निरकुश है। जव कोई उसकी निरंकुशता में अंकुश लगाता है तो उसके समक्ष उस कोई का कोई अस्तित्व नही । वह तो एक प्रस्तर है जो प्रवाह में आगया है, और वह उस अविराम प्रवाह को विश्रान्ति देना चाहता है।

सुलेखा—कि तु मैंने पढा था एक वार, कवि सर्वत्र समान रूप देखता है। कवि पद्मगुप्त के लिये तैलगण और उज्जयिन दोनो समान है । राजप्रासाद और पर्णकुटी तुल्य है।

जो काव्य-प्रवाह सरिता के चारु दुकूल पर सम्भाव्य है, वह क्या नीरव-वन प्रान्त में अथवा जनाकीर्ण खंड में सम्भाव्य नही है।

कवि पद्मगुप्त—उपयुक्त, किन्तु कवि का सम्बन्ध हृदय से है, हृदय चाहे पर-जनो की मित्रता ही क्यों न अनुभव करे, स्वजन तो स्वजन ही होगे।

काचनमाला—स्व-जन और परि-जन, कितना विस्तृत अन्तर है। कवि आपका सस्कार हो चुका है ?

कवि पद्मगुप्त—हा ! कहिये आपका अभिप्राय !

कांचनमाला—(क्षणिक विचार कर) तब तुम्हे उनकी स्मृति व्यथित कर देती होगी ?

कवि पद्मगुप्त—क्या यह सम्भव नही ! हमारा जीवन शुष्क तो नहीं है, सरस है।

काचनमाला—तब ही तो मैंने कहा था, त्याग और सयम सतोष को पराकाष्ठा को पहुँचा देते है और जहां स्मृति जागृत हुई नही कि स्व-जन और पर-जन का मोह-पटल दृष्टिगत होने लगता है।

कवि पद्मगुप्त—विरह-व्यथा भोगना भी तो एक तप शील जीवन है व्यथा से व्यथित रहने पर उससे त्राण पा जाने की सम्भावना, सकल्प और क्रियाएँ अशोभनीय है। स्व-जन कदापि न चाहेगा कि एकाकी व्यथा मे उसके सहयोगी का अकल्याण हो और उसे व्यथा का भार वहन करना पड़े। कलह तथा व्यग्रता पहुँचे। इसी कामना से दोन

एक-दूसरे के निमित्त वर्तमान लिये हुए चलते हैं, यह वीरत्व है। कापुरुष तो उस व्यथा-भार को सहन न कर सकने के कारण एक को द्वैत में विभक्त कर अपना अर्द्ध भाग स्वतः हटा लेता है, मै पहले पुरुषो में हूँ।

सुलेखा—कवि महाशय, फिर भी धैर्य तो धारण करना ही होता है।

कवि पद्मगुप्त—हमें नही चाहिए ऐसा धैर्य। हमे तो हमारा विरह ही प्रिय है। स्व-जन का विस्मरण तो नही कर पाऊँगा। वह सदैव हमारे सन्निकट रहे यही तो हमारे कवि-हृदय की पुकार है।

कांचनमाला—तव तुम कर ही क्या सकते हो कवि ?

कवि पद्मगुप्त—यद्यपि मै कुछ करने का सामर्थ्य तो नही पाता, किन्तु साथ ही यह भी नही कर सकता कि हृदय पर पाषण रख लूं। निष्ठुरता धारण कर अपने सहयोगी को उमी व्यथा मे घुलने दूँ—छटपटाते रहने दूं। एक शान्ति और सन्तोष के निमित्त तपस्या करे और दूसरा उसकी विरह-व्यथा में लीन रहे। उसकी व्यथा की कल्पना में तन्मय होना सुख है।

कांचनमाला—सुख तो दुःख के अभाव से ही उपलब्ध होता है। तव दुःख विस्मृत कर सुख ग्रहण करना ही उचित होगा, कवि।

कवि पद्मगुप्त—राजकुमारी, सुख क्या है और दुःख में क्या होता है, इसे तुम नही समझोगी। तुम्हारी मृणालवती ने सुख को जिस परिधि में बांध रखा है, वह तो उन्ही जैसी

के हेतु हो सकता है । मै तो मानता हू सुख शरीर और शरीर के नृत्य की सुमधुर सज्ञा है । सयमी सुख को क्या समझे । तुम अभी सयमशीला हो, जब सयम टूटेगा तब सुख क्या है जान जाओगी, काचनमाला ।

काचनमाला—और धारणा क्या हुई कवि ?

कवि पद्मगुप्त—मन में एक धारणा उठती है और पुन धारणा एकान्त ध्यान की ओर प्रवृत्ता होती है । एकान्त ध्यान में स्व-स्वरूप की विस्मृति कर देना होता है । धारणा ध्यान और विस्मृति का सगम है, राजकुमारी ।

काचनमाला—मोह अथवा लोभ तो जीवन में विकारी है । निर्विकार नहीं हो सके । मोह विरह का जनक रहा । विरह सयम और समाधि से भिन्न है । जहां सयम प्राप्त हुआ नही कि विरह-व्यथा स्वत हट जाती है । तो कवि तुम्हें मेरे सयोग से तुष्टि मिलती है ?

कवि पद्मगुप्त—नही क्यो ! किन्तु जितनी सहधर्मिणी से मिलती है, उतना नही । वह कवयित्री है, उनमें रस है, प्रगति है। तुममें कल्पना नही, नीरसता है, प्रगति ता अत्यन्त मन्थर है । उसमें परिवर्तन लाना होगा ।

काचनमाला—ला सकूंगी मैं ? अवश्य प्रयत्न करूंगी ।

कवि पद्मगुप्त—काचनमाला, क्षमा करना मै चलता हूँ । मुझे एक आयोजन में सलग्न होना है ।

काचनमाला—अवि तका जाना होगा ?

कवि पद्मगुप्त—नहीं, मुझे तैलगण में ही रहना होगा । अवन्तिका जाना तो तुम्हारे पितृश्री के वश की बात है । जब वे

चाहेंगे तब ही जा सकूंगा । अच्छा काचनमाला तो विदा लेता हूँ ।

कांचनमाला—(दोनो हाथ जोडकर) विदा, कवि । किन्तु शीघ्र दर्शन देना । मुझे अभी बहुत कुछ सीखना है ।

कवि पद्मगुप्त—शुभ हो ।

[कवि पद्मगुप्त का प्रस्थान, सस्मित-सी काचनमाला कवि को ओर देखती रहती है ।]

कांचनमाला—अवन्तिका ! (धीमे स्वर मे) अवन्तिका, मालवी-युवराज ।

[पट परिवर्तन]

छठा दृश्य

काल—वही पूर्ववत् ।

स्थान—तैलगण के प्रासाद गर्भ का वन्दी-गृह । कक्ष की प्राचीरें सुदृढ हैं । ऊपर छत से कुछ नीचे वायुदान हैं । इनमें होती हुई प्रकाश की किरणें कक्ष के प्रागण में बिखरी हुई है । कक्ष में एक ओर स्फटिक पाषाण-मच है । एक कोण से लगा हुआ एक रजत-पर्यङ्क है । उस पर बिछे वस्त्र निर्मल और श्वेत है । पास में दो मच रखे हुए हैं । वन्दी-गृह का निर्माण दो खण्डो में विभक्त है । प्रथम खण्ड में परिचारिका रहती है । दूसरा खण्ड स्वय वन्दी मुञ्जदेव के लिये प्रयुक्त होता है । परिचारिका यदा-कदा एक साधारण मच पर बैठती हुई दिखाई देती है । बाहर हृष्ट और भीमकाय सैनिक भल्ल धारण किए हुए, द्रुत-गति से इधर से उधर और उधर से इधर आता-जाता है । बाहर के द्वार से वन्दी वाला खण्ड दिखाई नही देता । वन्दी के दोनो रक्षक सतर्क प्रतीत होते हैं । समय रात्रि का प्रथम पहर ।

[मृणालवती और परिचारिका का प्रवेश । परिचारिका के हाथ में एक रजत-पात्र है, साधारण अन्धकार में भी यदा-कदा वह चमक उठता है । उस पर श्वेत और निर्मल आवरण पडा हुआ है । मृणालवती के वन्दी-गृह के द्वार पर पहुँचते ही अभिवादन के पश्चात् प्रहरी

द्वार अनावृत कर देता है। दोनो आगे-पीछे कक्ष के वाह्य खण्ड म पहुँचती हैं। उनके पहुँचते ही सैनिक परिचारिका द्वितीय खण्ड का द्वार खोलकर एक ओर हट जाती है। मृणाल और परिचारिका मुञ्जदेव के समीप पहुँचकर देखती है, मुञ्जदेव घूम रहे हैं इधर-उधर।]

मृणालवती—मुञ्जदेव ! अवन्तिका की स्मृति आती होगी। कैसा रहा यह वन्दी-जीवन ?

[परिचारिका हाथ का पात्र स्फटिक-मच पर रखकर वाह्य खण्ड में चली जाती है।]

मुञ्जदेव—स्मृति, आती है मृणालवती, किन्तु इसी हेतु कि वह जन्म-भमि है। और रहा यह जीवन, इसमें कुछ नवीनना अनुभव नही कर रहा हूँ। वैठिये (एक मच की ओर सकेत कर स्वय पर्यङ्कासन पर वैठने हुए) वन्दी-जीवन का अनुभव तो तैलपराज को विशप रहा है, वे अभ्यस्त रहे हैं।

मृणालवती—(सदर्प) मुञ्जदेव इस अधोगति को पाकर भी दर्प-चूर्ण नही होता ।

मुञ्जदेव—मृणालवती, अधोगति किसकी ? कैसी अधोगति ? तैलगण की भाग्य-विधात्री हमारी सेवा में तत्पर रहती है, फिर भी मुञ्जदेव की अधोगति. आश्चर्य है मृणालवनी।

मृणालवती—(सरोप) धृष्टता पर अनुशासन करना सीखो।

मुञ्जदेव—(सस्मित) अवश्य, हाँ तो भोजन भी करते जाएँ और सम्भापण भी चलता रहेगा। इसी में मुञ्ज को आनन्द मिलता है।

[मृणाल मौन रहती है, मुञ्जदेव उठकर भोजन-पात्र लेकर पर्यङ्कासन के निकट ही एक दूसरे मच पर रखकर]

मुञ्जदेव—निमत्रण स्वीकार करें देवी, आइये ।

मृणालवती—धृष्टता ! मुञ्जदेव सयम सीखो ।

मुञ्जदेव—इसे धृष्टता नही कहते, यही है शिष्टाचार । क्या तैलगण मे ऐसा शिष्टाचार, ऐसी भद्रता नही है ?

मृणालवती—(सक्रोध) यह अन्न किसका है ?

मुञ्जदेव—जिसका इस पर अधिकार है । यह हमारे अधिकार का है, हमारा हुआ ।

[मुञ्जदेव भोजन आरम्भ करते है ।]

मृणालवती—असत्य, मिथ्या । यह धारणा मिथ्या है ।

मुञ्जदेव—देवी मृणालवती पूजा-पाठ करती है न ।

मृणालवती—हाँ, नित्य, तुम्हारा हेतु ?

मुञ्जदेव—अपने आराध्य देव पर मृणालवती नित्य भोग चढाती है, पुष्प चढाती है, जल-सिंचन करती है । यह सब भी तो तुम्हारे आराध्यदेव का ही है, सोचा है तुमने कभी ।

मृणालवती—शिव अखिलेश्वर है ! सब वस्तु तो उन्ही के निमित्त है । उनका भोग उन्ही को मिलता है ।

मुञ्जदेव—और हमारा भोग हमें, इसमें अन्तर क्या रहा ?

मृणालवती—(सरोष) आराध्यदेव की समता करते हुए लाज नही आती तुम्हे।

मुञ्जदेव—ऐसा कुकृत्य, लज्जाजनक कर्म मुञ्ज ने कब किया है। उसके-यश-गान दिग्-दिगन्तो में गुञ्जरित होते रहे हैं। देवी व्यञ्जनशास्त्र में तो प्रवीण है। षड्रस व्यञ्जन, भोज्य-पदार्थ देवी स्वय प्रस्तुत करती है। हम उपकृत है।

मृणालवती—मुञ्जदेव व्यर्थ की स्तुति से लाभ। वन्दी को जो मिला वही तो अमृत रहा उसके लिए।

मुञ्जदेव—वन्दी कौन मृणालवती ! हम वन्दी है ? यह भूल है मृणालवती। तुम-सी मानिनी यहाँ है। उनसे सम्भाषण में आनन्द मिल रहा है। आत्मा स्वतन्त्र है वह विचरण करती है, हमारा मन-मस्तिष्क इतस्तत सर्वत्र भ्रमण करता रहता है। रही, देह उस पर स्वत्व ही कहाँ है ? आज है कल नही। मन-मस्तिष्क की देन अमर है। और उसे हम अवन्तिका में भी स्थापित कर चुके हैं और यहाँ तैलगण में भी अमर कर जाएँगे। हमारे जीवन का वैभव यहाँ के रज-कणो मे झलक उठेगा।

मृणालवती—इस अहकार का त्याग करो, स्वस्थ जीवन बनाओ मुञ्जदेव। तुममें त्याग और सयम, साधना और तप कहाँ रहा है। निर्विकार मन से विचार करो तो तुम्हे अपने अहकार का ध्यान होगा। मेरा जीवन तपमय रहा है। मैंने सब कुछ पाया है, उसमें।

मुञ्जदेव—भूलती हो देवी, तप भोग के बिना अधूरा है। तप और भोग एक-दूसरे के पूरक हैं। तप और भोग भारतीय संस्कृति के मेरुदण्ड हैं। दोनों का समन्वय ही प्राण है। एक के अभाव में दूसरा उपहासास्पद है। और तुम्हारा जीवन एकाकी रहा है। जब तुमने एक का अनुभव नहीं किया तो दूसरे का महत्व क्या समझोगी। तुमने दमन और निग्रह का आश्रय लिया है। दमन और निग्रह आरोपित क्रियाएँ है और उनमें जीवन की सद्गति तथा सरसता नहीं। इस प्रकार कष्ट-साध्य-साधना जीवन की उर्वरता को नष्ट कर देती है—एक रहस्यमय साध्य की प्राप्ति के भ्रम में तुम अपने जीवन के प्रसाद को भूल गई हो मृणालवती।

[मुञ्जदेव भोजन समाप्त करते हैं]

मुञ्जदेव—(परिचारिका को सम्बोधित करके) परिचारिका! ले जाओ इसे।

[परिचारिका प्रवेश कर पात्र उठाती है]

मृणालवती—सुनन्दा!

मुञ्जदेव—सुनन्दा! (सहास्य) क्या तुम भी तापसी हो?

मृणालवती—मुञ्जदेव! यह अभी बालिका है। इससे सम्भाषण तुम्हें इष्ट नहीं।

मुञ्जदेव—इसका रूप-परिधान तो तापसियों-जैसा है, जैसा मृणालवती का। और जो थोड़ा-बहुत अन्तर है वह तो अवस्था-भेद से ऐसा प्रतीत होता है।

मृणालवती—तैलगण मे तपपूर्ण ही जीवन है। अवन्तिका-सा कलकित जीवन नही है। यहाँ शृगार, काव्य, सगीत, हेय है, त्याज्य है और तुम्हें भी इसी उपादान का आश्रय लेना होगा।

मुञ्जदेव—असम्भव ! मृणालवती, कलकित जीवन अवन्तिका मे दुष्कर है। जहाँ जीवन स्रोत की मुक्त गति में प्रवाहित हो, वहाँ सरोवर की कीच की सम्भावना कैसे हो ? वहाँ तो आत्म-तुष्टि और इच्छा का प्रतिफल देने वाला जीवन है। वहाँ काव्य और प्रेम की अनवरत धाराएँ प्रवाहित होती है। सगीत-काव्य यहाँ नही, आश्चर्य मृणालवती ! तब तो यहाँ का जीवन शून्य है, नीरस-सा लगता होगा यहाँ का वातावरण।

मृणालवती—मुञ्जदेव कर्म-साधना मे भी अपना सौन्दर्य है और यह देश महादेव के उसी वरदान से भूपित है। यहाँ का वातावरण पवित्र है और वह ऐसी ही मर्यादा-शीलता लिए है जैसा कि तुमने इस वन्दी-गृह में अब तक अनुभव कर लिया होगा।

मुञ्जदेव—इस वन्दी-गृह का अनुभव ! यहाँ तो सब कुछ उपलब्ध है। सौन्दर्य है, अनुभूति है, सत्य है। यहाँ अभाव किसका है। तुम्हारा सौन्दर्य सुदूर तक जाना हुआ है। रूपसी मृणाल ने तापसी का बाना धारण किया है सही, किन्तु उसकी छटा निहारने योग्य है। तुम्हारी छवि के कारण इस वन्दी-गृह की भित्तियों को रूप-वैभव लुटा गए है !

देखो, मेरे नेत्रो से देखो। क्या यह सत्य नही है। यह सौन्दर्य ही आनन्द-प्रदाता है मृणालवती।

मृणालवती—(सरोप) मुञ्जदेव इस दुर्गति को पाकर भी इतनी पातकी भावना। तैलगण की भाग्य-विधात्री, अधिष्ठात्री देवी के साथ सम्भापण कैसे किया जाना चाहिये, यह भी नही जानते। यही है तुम्हारी सस्कृति, सुसस्कृत उज्जयिनी की सस्कृति।

मुञ्जदेव—कैसी दुर्गति, किसकी दुर्गति! उज्जयिनी की सस्कृति को तुम क्या समझो? मृणालवती के राज्य में सस्कृति नीरस है, शुष्क है।

मृणालवती—(सरोप) दुर्गति! दुर्गति पूछिये अपनी कीर्ति से, अपनी कवि-मण्डली से। यह पराजय कदापि विजय नही कही जा सकती।

मुञ्जदेव—हमारी कीर्ति अब भी उन्नतोत्तर है। जिस मानिनी को अवन्तिकानाथ का सेवा-भार ग्रहण करना पडा, उसकी कीर्ति सन्देहास्पद कहाँ रही। कहाँ तुम तपस्विनी और कहाँ यह मुञ्ज। मुञ्ज के कवि-रत्नो ने ही तो मुञ्ज को इस योग्य बनाया है कि तैलगण की आधार-शिला मुञ्ज के अवलोकन करने का लोभ सवरण न कर सकी। मृणालवती, तुम अपने हृदय का स्पन्दन सुन रही हो, उसकी अवहेलना मत करो। यह जीवन का सत्य

मृणालवती—यह तो तब ज्ञात होगा जब तुम्हारा यह पार्थिव शरीर तत्त्वो में परिगत हो जायगा।

मुञ्जदेव—फिर तो मुञ्ज की कीर्ति में स्वर्ण और सुहागे का साम्य होगा, मृणाल।

मृणालवती—मुञ्जदेव! तुम्हे तुम्हारे पापाचार भी लज्जित नही करते?

मुञ्जदेव—मृणालवती भ्रम में हो। इस मुञ्ज ने तो कोई पापाचार हुआ ही नही, जो उसे इष्ट था वही उसने पाया। उसे कब प्रायश्चित्त करना पडा है?

मृणालवती—तब तुम्हारी भाषा मे इच्छित कामना पाप नही है, क्यो?

मुञ्जदेव—निस्सन्देह, पाप कैसा?

मृणालवती—(साश्चर्य) पाप कैसा! तभी तो यह जीवित नर्क भोग रहे हो।

मुञ्जदेव—नर्क। मृणालवती, जब हम उज्जयिनी से हटकर तुम्हारे इतना निकट आगये है तो इसे तुम नर्क समझ रही हो! इसे मैं तो स्वर्ग से भी बढकर मान रहा हूँ! जो रग, जो आनन्द मुझे अपने प्रासादो में उपलब्ध था वही यहाँ पा रहा हूँ।

मृणालवती—समझती हूँ, सन्तोष को सुख मान रहे है। इस निर्लज्जता की भी पराकाष्ठा है!

मुञ्जदेव—मृणालवती, तैलगण की राजमाता आज यो एक बन्दी के समक्ष इस समय चली आवे, फिर भी उसकी लज्जा स्वस्थ है। मृणालवती यदि तुम्हारी यही दशा नही तो

तुम स्वय एक बडी भूल कर बैठोगी और उस भूल मे अपना जीवन तिल-तिल कर घुला दोगी। तब तुम्हे यह पृथ्वीवल्लभ और उसका अप्रतिम प्रताप स्मृति-दूत बनकर विलोडित करता रहेगा।

मृणालवती—स्वप्न देख रहे हो मुञ्जदेव। क्या अब भी तुममे प्रताप शेष रह गया है? क्या तुम कीर्ति-शेष नही हो चुके हो?

मुञ्जदेव—यह तो तुम्ही अधिक समझ सकती हो।

मृणालवती—कैसे?

मुञ्जदेव—कैसे! मेरा प्रताप और शौर्य तुम्हारी प्रतिद्रा के भाजन हो रहे है। जब समस्त चराचर विश्व सुख-शान्ति अनुभव कर रहा है, तुम अपने को खोकर यहाँ बन्दी-गृह मे चली आती हो। तुम्हारे हृदय मे मथन नही हो रहा क्या?

मृणालवती—क्या कह रहे हो मुञ्जदेव? इस वाचालता को सीमित ही रहने दीजिये।

मुञ्जदेव—इसे वाचलता नही कहते मृणालवती। सत्य पर मिथ्या का आवरण कही चढा है! तैलगण का एक-एक प्रस्तर-खण्ड अनुभव कर रहा है कि मुञ्ज अब भी प्रतापी है। यहा की एक-एक भित्ति पुकार-पुकारकर मुञ्ज की कीर्ति के गुणगान गा रही है।

मृणालवती—तो अभी तैलगण की शक्ति देखना शेष है, क्यो?

मुञ्जदेव—इस प्रकार के सुयोगों को मुञ्ज सदैव सौभाग्य मनाता रहा है। तैलगण बार-बार मान-खण्डित हो चुका है, आज उसकी—तैलगण की देवी की परीक्षा है। वह कितना मान रख सकती है।

मृणालवती—मुञ्जदेव ! धृष्टता पर अनुशासन करना सीखो। अपदस्थ और असहाय होकर भी कल्पना-लोक मे विचरण कर रहे हो। कल्पना ही से सब कुछ उपलब्ध कर लेते हो, यथार्थ में कुछ नही।

मुञ्जदेव—यथार्थ का प्रमाण इससे और क्या अधिक हो सकता है मृणालवती कि दूर दूर करती हुई जिसे तुम नीच, कलकी और पापाचारी समझ बैठी हो उसी को अपने अन्तरतम मे बैठा लेना चाहती हो। लौह-खण्ड ने सोचा था, चुम्बक को खीच लाऊँगा, किन्तु वह बिचारा तो दया का पात्र बन गया।

मृणालवती—मुञ्जदेव भूल रहे हो ! वर्षों की मेरी पूजा-पाठ और तपश्चर्या निष्फल नही जा सकती। क्या उनमे यथार्थता नही, उनमें प्रभाव नही ?

मुञ्जदेव—मृणालवती यहां तार्किक भावना क्यों जागृत हो रही है ? तुम्हारी तपस्या वर्षों की है इसे मुञ्ज सुन चुका है किन्तु फिर भी आज वह रहने से [illegible] में [illegible]

नही कि तुम छली जा रही हो। आत्म-प्रवञ्चना इसी को तो कहते है।

मृणालवती—(सक्रोध) मुञ्जदेव, इस धृष्टता का प्रतिफल आने वाला प्रभात देगा। इतना अहम्। अच्छा।

[प्रस्थानोद्यत]

मुञ्जदेव—मृणालवती, जानता हूँ तुम्हारे लिये यह नवीन पथ है। लौट रही हो ? पर पूछना चाहता हूँ फिर कब आओगी ?

[भृकुटी परिवर्त्तित करके सरोष मृणालवती का प्रस्थान]

[पट परिवर्तन]

अंक तीन

पहला दृश्य

काल—वही विक्रम की ग्यारहवी शती का उत्तरार्द्ध ।

स्थान—तैलगण-प्रासाद में मृणालवती का विश्राम-कक्ष ।

(उसमें सौदर्य-सज्जा के प्रसाधन दृष्टिगोचर नही होते । साधारण पर्यङ्कासन पर बाघम्बर बिछा है । उसके समीप कुछ मच रखे हैं । पर्यङ्कासन के समीप का पाद-पीठ मृगचर्म से आवृत्त है । पर्यङ्कासन के सम्मुख ही कैलाशपति महादेव की मूर्ति है । मूर्ति के चारो ओर रजत-पत्रिका लगी है । परिचारिका वस्तुओ को सुव्यवस्थित करती हुई दिखाई देती है । समय : रात्रि का प्रथम प्रहर ।)

[तैलपराज, भिल्लमराज अक्कलादेवी तथा लक्ष्मीदेवी का प्रवेश]

तैलपराज—सुनन्दा, वह्नि कहां है ?

सुनन्दा—(सविस्मय अभिवादन करके) देव, आती ही होगी । वन्दीगृह से लौटी नही है ।

तैलपराज—भिल्लमराज ! यह कुछ उचित प्रतीत नही होता ।

भिल्लमराज—बहिन मृणालवती पर मुञ्जदेव का सरक्षण-भार श्रीमान् ने डाल रखा है ।

लक्ष्मीदेवी—उचित तो यह रहेगा कि मुञ्जदेव को बन्दी-गृह से हटा-कर पास वाले विलासभवन में नियन्त्रित करदें, श्रीमान् ! यहाँ से बहिन मृणालवती उचित सरक्षण भी रख सकेंगी ।

तैलपराज—सम्मति तो उचित ही प्रतीत होती है । बहिन की चिर-पोषित अलिाषा पूर्ण होने में भी उन्हे मुञ्जदेव से योग मिलता रहेगा । लोक-कल्याण की भावना बहिन मृणालवती में प्रवल है, उसकी अभिवृद्धि के निमित्त (गम्भीरतापूर्वक) मुञ्जदेव को कुछ अवकाश देना होगा ।

भिल्लमराज--यह निवेदन हम कर देंगे मुञ्जदेव से । हमारा अनुरोध वे टाल न सकेंगे ।

लक्ष्मीदेवी—(तैलगण-महिषी को सकेत करती हुई) क्यो बहिन जक्कलादेवी, महादेवी को भी स्वातन्त्र्य-समीर-सेवन करने का कुछ अवकाश मिल सकेगा ।

[सब मृदु हास्य करते है]

जक्कलादेवी—व्यग करने में बहिन अग्रणी है । (सहास्य) बहिन को महासामन्त ने स्वाधीनता दे रखी है, क्यो ?

[पुन मृदु हास्य]

भिल्लमराज—बहिन आ रही है ।

[मृणालवती की मुद्रा गम्भीर देखकर]

जक्कलादेवी—आ गई बहिन ! हम लोग बहुत समय से प्रतीक्षा कर रहे हैं। यह मुद्रा गम्भीर क्यों है ?

मृणालवती—(भृकुटी पर और भी गम्भीरता धारण करके) इसका हेतु ?

लक्ष्मीदेवी—बहिन ! श्रम-भार से थक जाती है।

भिल्लमराज—बहिन को यह श्रम अब न करना होगा। मुञ्जदेव का निवास इस समीपवर्त्ती विलास-भवन में ही किया जा रहा है। बहिन यहां से ही उन पर नियन्त्रण रखेंगी।

मृणालवती—(भृकुटिपरिवर्तन कर गम्भीरतापूर्वक) क्यों ? इस नवीन व्यवस्था का हेतु ?

तैलपराज—बहिन की इच्छा सरलता से पूर्ण हो इसी का उपक्रम कर रहे हैं भिल्लमराज।

मृणालवती—(गम्भीरतापूर्वक) कैसी इच्छा ?

तैलपराज—जिसकी बहिन को आवश्यकता थी। मुञ्जदेव से तुम्हें पठन-पाठन में सहयोग मिलेगा। भावी जीवन के हेतु कल्याण-मार्ग का अध्ययन अभीप्ट था।

मृणालवती—(सक्रोध) मैं अध्ययन करूँगी, उन कलवी से ! उन पापाचारी से ! जिसकी भावनाएँ दूषित रही हैं। जिनकी संस्कृति कलंकित रही है।

लक्ष्मीदेवी—बहिन, स्वस्थ हो। मुञ्जदेव न हंस-वाहिनी सरस्वती

से वरदान पाया है। उनका अध्ययन विस्तृत है, उनका सान अपरिमित है।

मृणालवती—(कठोरतापूर्वक) उसने तैलगण की कीर्ति को कलंकित किया है, उसके काव्य ने तैलगणराज और हमें कलंकित किया है। उससे मृणाल अध्ययन करगी ? मुझे तो उसमें स्वस्थता लानी है, उसमें परमार्थ-भावना देखनी है।

भिल्लमराज—संसर्ग से ही तो भावना में परिवर्त्तन होगा, बहिन। मृणालवती का तप, त्याग, संयम, विवेक ही तो उनमें स्वस्थता ला सकेंगे।

तैलपराज—(गम्भीरतापूर्वक) उसका अन्तःकरण निर्मल करना होगा। तैलगण में वह सीखेगा। अवन्तिका का शिक्षक अध्ययन करेगा अब।

मृणालवती—यथेष्ट, मैं (सरोष) उसे सिखाकर ही छोड़ूँगी। निर्विकार जीवन का महत्व वह तैलगण में प्राप्त करेगा।

[तैलपराज तथा भिल्लमराज का प्रस्थान। मृणालवती पर्यंङ्कासन पर, जक्कलादेवी और लक्ष्मीदेवी मंचों पर बैठती हैं]

जक्कलादेवी—बहिन मृणालवती, कैसे हैं मुञ्जदेव ?

मृणालवती—(भृकुटी परिवर्त्तित करके) तुमने तैलगणराज को देखा है, महासामन्त को देखा है। फिर नवीनता क्या है उसमें। वह भी हाड-मांस-निर्मित मानव-पिंजर है। वह भी विकार-ग्रस्त।

लक्ष्मीदेवी—सुना है मुञ्जदेव और साधारण व्यक्ति में गंगा और

गोमती-सा अन्तर है। हिमाचल और अर्वली की उपत्य-काओं की-सी भिन्नता है। क्षीर-सागर और कृष्ण-सागर-सी असमानता है।

मृणालवती—(सरोष) लक्ष्मीदेवी! पार्थिव है वह देह।

लक्ष्मीदेवी—उनका अप्रतिभ सौंदर्य अलौकिक है, बाह्य स्वरूप आकर्षित करता है, और आन्तरिक समर्पण के लिये विवश करता है।

मृणालवती—(गम्भीरतापूर्वक) क्षण-भंगुर शरीर के लिये इतना मोह लक्ष्मीदेवी! (सरोष) तुम्हारा सात्विक और धर्म-परायण जीवन दूषित नहीं हो जाता। पर-पुरुष की रूप-स्तुति भारतीय नारी के लिये दूषण है।

लक्ष्मीदेवी—(साश्चर्य) दूषण कैसा, वहिन मृणालवती! भावना प्रधान होती है। हमारी भावना में दूषण कहां है। वह सनातन सत्य को कहे, तब दूषण कैसा?

मृणालवती—सौन्दर्य-वर्णन दोष है, लक्ष्मीदेवी। यह क्षण-भंगुर है। अल्पकाल में ही नष्ट हो सकता है, कल उसे भी भस्मीभूत हो जाना है। फिर उसमें और साधारण रूप में अन्तर कैसा! सब नष्ट हो जायगा। सब म्रियमाण!

[मृणालवती पर्यंकासन पर पौढ़ जाती है, लक्ष्मीदेवी तथा जक्कलादेवी वहां से अभिवादन करके प्रस्थान करती है।]

मृणालवती—(सम्बोधित करके) सुनन्दा, ओ सुनन्दा।

[सुनन्दा प्रवेश करके]

सुनन्दा—आज्ञा माताश्री!

मृणालवती—कोई भीतर प्रवेश न करे। (उठकर शिव-मूर्ति के पास पहुँचकर) देवाधिदेव, महादेव ! मुझे संयम दो, शक्ति दो देव। भ्रमित मन में स्वस्थता धारण कर सकूँ। इतने वर्षों की साधना एक साधारण व्यक्ति के सम्मुख आकर टकरा रही है। मेरे त्याग, तपस्या और पारायण मुञ्ज से द्वन्द्व लें। इस संघर्ष में मैं विजयी होऊँ, यही वरदान दीजिये, मेरे स्वामी। मुञ्ज का देदीप्यमान तेज, उसका व्यक्तित्व नष्ट होकर ही मेरी तपस्या को महान् बना सकेगा। उसका यश धरा-लुण्ठित होने पर ही मेरा भ्राता पृथ्वीवल्लभ कहला सकेगा। मुञ्ज की कीर्ति ध्वंस करने की ही भावना प्रबल हो उठे। शक्ति दो भगवन्, संयम दो मेरे देवता। भस्मसात् कर सकूँगी, उसका अहंकार ?

[मृणालवती आत्म विभोर संज्ञा-शून्य-सी प्रतीत होने लगती है। मेरे प्रभु, मेरे देवता, देवाधिदेव महादेव, की धीमी ध्वनि से कक्ष भर जाता है।]

[पट परिवर्तन]

दूसरा दृश्य

काल—वही पूर्ववत् ।

स्थान—वही पूर्ववत् मृणालवती का विश्राम-कक्ष ।

[तैलगण-सामन्त के साथ मुञ्जदेव का प्रवेश । कुछ परिचारिकाएँ आवश्यक व्यवस्था में व्यस्त हैं । वे त्वरा से हटकर बाहर चली जाती हैं । कक्ष में प्रवेश करके मुञ्जदेव इधर-उधर दृष्टि डालते हैं । उन्हें मृणालवती दिखाई नहीं देती । रणमल्ल उन्हें छोड़कर बाहर प्रतीक्षा करता है । मृणालवती को आता देखकर अभिवादन करता है । समय रात्रि का द्वितीय प्रहर ।]

मृणालवती—क्यों, आज मुञ्जदेव नहीं आये ?

रणमल्ल—भीतर हैं ।

[अभिवादन के पश्चात् प्रस्थान]

मृणालवती—(अपने कक्ष में प्रवेश करती हुई) मुझे आजकल कुछ विलम्ब हो जाता है । शिव-आराधना कितनी कल्याणमयी है ।

[मुञ्जदेव को देखकर उसकी भृकुटी तन जाती है । मुञ्जदेव इधर-उधर घूम रहे हैं ।]

मुञ्जदेव—आ गई तुम ! कहाँ हो आई ?

मृणालवती—(सगर्व) शिवालय से आ रही हूँ। पूजा-पाठ से निवृत्त हुई हूँ।

मुञ्जदेव—पूजा-पाठ ! क्या आवश्यकता है इसकी ?

मृणालवती—नहीं क्यों, सन्तुष्टि तो इसी से मिलती है।

मुञ्जदेव—पर ऐसी सन्तुष्टि का होगा क्या ! मृणालवती का सयम शिथिल हो रहा है।

[मृणालवती पर्यङ्कासन तथा मुञ्जदेव मंच पर बैठते हैं।]

मृणालवती—(सक्रोध) मुञ्जदेव अविवेक से इतना मोह ! क्या यही अविवेक काव्य-प्रेरक-तत्व है। क्या इसी विवेक ने उज्जयिनी की कीर्ति प्रसारित की है ?

मुञ्जदेव—मेरे विवेक के प्रति तुम्हारा मोह क्यों जागृत हो रहा है ?

मृणालवती—मुञ्जदेव, तुममें स्वस्थता, पवित्रता उद्भूत हो, यही तो मेरी कामना है। विश्व-कल्याण के निमित्त पाप, जिसे ससार पाप की सज्ञा देता है, उससे पराङ्मुख होकर सयम की प्रतिमूर्ति बनकर उतरो। जो आत्मा पाप-पक में लिप्त है उसे निर्मल करना है।

मुञ्जदेव—मृणालवती, अनधिकृत चेष्टा अशोभनीय है। जो स्वय अनुभूतिहीना है, वह दूसरों को अनुभूति प्रदान करा सकेगी ! सन्दिग्ध !

मृणालवती—मुंजदेव मै तो तुम्हारे कल्याण के निमित्त ही प्रयत्न-शील हूँ।

मुञ्जदेव—मेरा कल्याण, महाप्रतापी मुञ्ज का कल्याण (उच्च हास्य)।

मृणालवती—(गम्भीरतापूर्वक) मुञ्जदेव।

मुञ्जदेव—भ्रमित हो रही हो मृणालवती। कही पर-जनो के निमित्त भी परमार्थ होता है।

मृणालवती—मुञ्जदेव, आडम्बर का परित्यागन ही हृदय की स्वस्थता है। जब परमार्थ-भावना उद्भूत हो जाती है तब स्व और पर में भेद नही रहता।

मुञ्जदेव—मृणालवती, मुञ्ज की दिशा यही रही है, उसने ऐसे ही कर्मों को प्राधान्य दिया है। निर्धन और असहायो को आश्रय दिया है, दुखी और पीडित-जन को त्राण। यह कल्पना तो मेरे मानस में उठी ही नही कि इस परमार्थ मे स्वय मेरा कल्याण निहित है। मेरा हृदय तृप्त होता है। फिर इसे परमार्थ कैसे कहूँ। मेरे अहम् और उनकी भावना को संतोष मिलता रहा है, यहाँ मेरे मानस मे आडम्बर कहाँ था, मृणालवती।

मृणालवती—भ्रमित होना जानते हो मुञ्जदेव।

मुञ्जदेव—भ्रमित कहाँ हूँ। विश्व के प्रागण में अनेक कूप और वापिकाएँ है, यात्रिक-शालाएँ है और पानुशालय भी। निर्माता ने इन सत्कर्म से आत्म-तुष्टि पाई है। ऐसे परमार्थ स्वात. सुखाय नही तो क्या है। कवि-हृदय

कविता के प्रवाह मे प्रवाहित होता है, तब वह स्वान्त सुखाय की सुखद भावना लेकर चलता है। लोक-कल्याण तो उसका गौणकर्म स्वत निर्धारित हो जाता है। उसके हृदय की निर्मल भावना जागरूक होती है और उसे वह लोक-कल्याण के हेतु जनता-जनार्दन के समक्ष रखता है। फिर क्या उसे इससे आत्म-सतोष और यश नही मिलते।

मृणालवती—मुञ्जदेव यह तो आत्म-प्रवचना हुई।

मुञ्जदेव—तब तैलगण की भाग्य-विधात्री ही निर्णय दे। मुञ्ज की दिशा में परिवर्तन ला सकेंगी।

मृणालवती—मुञ्जदेव निष्कलक जीवन

मुञ्जदेव—निष्कलक जीवन! कलक क्या है? मृणालवती की आत्मा स्वय भूल बैठी है। जो स्व-कलक को पहचानते है उन्हे ही तो निष्कलक जीवन की ओर अग्रसर होना है। मेरा कलक निष्कलक है। मेरा जीवन निष्कलक है। मुञ्ज जिस दिशा में पद-प्रसारण करता है तब वह अपने विवेक को खो नही देता। स्वय सरस्वती ने मेरा व्यजन सृजा है। मैंने साधना और तपस्या का हृदयगम किया है। अब इस जीवन में शेष ही क्या रह गया है मृणाल! मैं अब भी सुखी हूँ और मेरा भविष्य भी सुखद है। जिसे मैंने अपनत्व दिया है उससे से मैंने पूर्ण लिया है। सम्भव है तुम्हारी धारणा इसके प्रतिकूल हो? इन सुख को दुख की सज्ञा दो।

मृणालवती—मुझे इस प्रकार के उपदेश की आवश्यकता नहीं है।

मुञ्जदेव—देवी यही तो बुद्धि-भ्रम है, इसे दूर कर सको तब ही तो समझोगी।

मृणालवती—तुम मुझे पहचानते हो ? एक सम्राट् की पुत्री, दूसरे सम्राट् की भगिनी, एक साम्राज्य की भाग्य-विधात्री। तुम उसके मान से खिलवाड़ कर रहे हो, मुञ्जदेव ! जो तुम्हारे लोक और परलोक के हेतु कल्याण-भावना बना रही है, उसे तुम्हारा दूषण मिल रहा है। (गम्भीरता-पूर्वक) इस अनधिकार सम्भाषण का दण्ड जानते हो ?

मुञ्जदेव—विषाक्त शरों द्वारा शरीर-भेदन अथवा आखेट-कुशल श्वान इस शरीर से क्रीडा करें, जिससे तुम्हारी आत्मा को सन्तुष्टि मिले वही।

मृणालवती—मेरी शक्ति ऐसी ही है, किन्तु मेरा मन कहता है कि अब भी अवसर है—तुम सन्मार्ग का आश्रय ले सकते हो।

मुञ्जदेव—'सत्य, शिव सुन्दरम्।' मृणाल के मन की गति जिस दिशा की ओर सचरित है वह अभिनन्दनीय है।

मृणालवती—मुञ्जदेव इस हेय भावना को जन्म न दो। इस परिधि से दूरस्थ स्थिति ही मानवता की सूचक है। कलंक

मुञ्जदेव—पुनः कलंक ! कलंक किसे कहते हैं ? सोचो, समझो। यह तो कलंक नहीं है। द्वैत का [illegible] है। [illegible]

माया एकाकी भाव में मिल रहे हे। क्रान्ति और शान्ति का साम्य हो रहा है। विश्व में क्रान्ति ही जीवन है, शान्ति तो अकर्मण्यता है। ममत्व प्रसारित हो रहा है मृणालवती। पुरुष और प्रकृति का सयोग ही इसका मूलाधार है। माया ब्रह्म का ही एक अश है, किन्तु वाह्य दृष्टि से अथवा कहिये सांसारिक दृष्टि से पार्थक्य को ही प्रधानता देदी जाती है। /

मृणालवती—तपस्या कीजिये मुञ्जदेव, तभी तुम्हारी आत्मा का शान्ति मिलेगी।

मुञ्जदेव—मृणाल, तपस्या! जीवन के अग्नि-पथ पर चले बिना तपस्या का महत्व ही क्या है? आत्मा ब्रह्म और माया का सयोग है। मृणालवती तुममें ज्ञान है किन्तु तुम्हारा मन विशुद्ध सकल्प का द्योतक नहीं है। इसका मुझे क्षोभ है और तुम्हारी मुखाकृति भी इसका स्पष्ट प्रमाण दे रही है। केवल ज्ञान द्वैत का जनक होता है, 'तू' और 'मे' के विभेद में वह विधायक नही बन पाना, वह खण्डन करता है। भाव-लेपन से ही एकत्व की सिद्धि प्राप्त होता है। हृदय की सम्वेदना के सचार को अवरुद्ध मत करो मृणाल, तुममें वह धार प्रस्फुट हो चली है, वह अब रुक न मकेगी—वह तट से टकराकर ही तुष्टि पायेगी, क्या यह तपस्या नही है?

मृणालवती—मुञ्जदेव!

मुञ्जदेव—देवी !

मृणालवती—यह कैसा वेग है ? महादेव ! यह मन की विचलन !—मुञ्जदेव !

मुञ्जदेव—देवी ! आज्ञा ?

[मृणालवती मूक वाणी और अपलक नेत्रो मे देखती है]

मुञ्जदेव—मृणाल ! तप्त-तप्त, पुनरपि पुन काचन कांतवरणम् । हम दोनो कर्म-क्षेत्र के अभिनेता हैं । तुम्हारा भूत कह रहा है कि तुम एकाकी रहना चाहती रही हो, किन्तु मेरा रूप सार्वभौम रहा है । एक निर्जन में पुष्टि पाने मे, मोक्ष ढूंढने में सलग्न रहा है, तो दूसरा विश्व के अनन्त प्रागण में—जनाकीर्ण पथो में । एक ने शून्य कल्याण को अपनत्व दिया है तो दूसरे ने जीवन का उद्देश्य हृदय के वैभव को विकीर्ण करने मे माना है ।

मृणालवती—(साश्चर्य) मुञ्जदेव तुम्हारे नेत्रो में अश्रु-कण ?

मुञ्जदेव—यह तो हर्षातिरेक के कारण बने हैं । अनुभव करता हूँ मृणाल के मानस मे अनुराग प्रस्फुटित हो रहा है । प्रेम मे मिलन भी है और विरह भी । मृणालवती ! प्रेम सुधांशु का रस-पान भी करने लगता है तो कभी उसे मृग-तृष्णा की भाँति छटपटाते भी देखा है । हृदय अभिन्न हो जाते हैं । नेत्र हृदय की वाष्प-विमोचन करने लगते हैं । बड़ा कठोर मार्ग है वह । निरापद भी नहीं है ! विरह-व्यथा

को शीतल ज्योत्सना और सरोवर का समस्त जल भी शमन नहीं कर सकता। यह तो दो आत्माओं के अन्तर की दूरी को सामीप्य पर ला रखता है। वियोग-विक्षिप्ता मूर्ति स्व में ही अनुभव होने लगती है। मृणालवती, तुम उसकी अनुभूति करोगी तो जीवन के स्वर्णिम पट तुम्हारे समक्ष प्रकट हो जायेंगे। उसकी माधुरी में तुम्हारा मन-मयूर नृत्य करने लगेगा। ऐसा लोक है वह!

मृणालवती—मुझे क्षमा कर दो मुञ्जदेव! मैंने अपनी दुर्बलता

मुञ्जदेव—मृणाल सत्य का अनुभव हुआ है तुम्हें। कल्पना करो मृणाल, एक प्रोषित-पतिका की—उसकी विरह-वेदना की। उसका नाम जानना चाहोगी। वह है चित्रांगदा। विरह की घटिकाएँ विघटित करती होगी, प्रतीक्षा में। वह भी नारी है और नारी-हृदय कोमलता लिये है। जब कठोरता धारण करने वाली में भी सहृदयता द्रवीभूत हो उठी है तब सहृदय नारी के लिये यह उपेक्षणीय नहीं हो सकता।

मृणालवती—तब ऐसी है यह प्रेम-समाधि! मुझे तो एक निर्मल-ज्योति प्रतीत हो रही है, मुञ्जदेव। स्व-पथ निर्माण कर सकूँगी मैं, उसमें! विरह के क्षण भी कितने सरस हैं, कितने करुण! स्व-जन कितना निकट हो जाता है इसमें।

कहाँ अवन्तिका और कहाँ तैलगण। दोनो हृदय इतने समीप है कि उनमें तीसरा स्थान पा नही सकता।

मुञ्जदेव—मृणाल मन मे स्वस्थता लाओ। तैलगण की भाग्य-विधात्री हो, तुम।

मृणालवती—यह कवि-शिरोमणि मुञ्जदेव की वाणी है?

मुञ्जदेव—क्षमा करें मृणालवती, मन की व्यथा ने प्रबलता पाली है।

मृणालवती—हृदय का आलेख पढकर भी चित्त व्यथित हो उठा है?

मुञ्जदेव—चित्रागदा को जीवन-सहचरी बनाकर लाया हूं। क्या उसे इसी दशा में व्यथा का भार ढोते रहने दूं। हृदय के सर्वोच्च आसन पर बिठा चुका हूं उसे, अपदस्थ कैसे कर सकूंगा।

मृणालवती—तब यह वियोग क्यो?

मुञ्जदेव—यह तो दैव-गति है, समय की विडम्बना है।

मृणालवती—पुरुषार्थ करना तो मानव का धर्म रहा है।

मुञ्जदेव—इस मान्यता में मेरी स्वीकारोक्ति है।

मृणालवती—तब मैं दूंगी योग।

मुञ्जदेव—(साश्चर्य) सत्य मृणाल'

मृणालवती—असत्य की परिधि से दूर ही रहती आई हूँ। पुराने सत्य से नवीन सत्य की शोध करूँगी। आपका योग-दान मिल सकेगा कवि-हृदय ?

मुञ्जदेव—(साश्चर्य) मृणाल !

मृणालवती—मृणालवती सयम और तप की साधना से हटकर एक नवीन दिशा में बह चली है। सम्पर्क दोष प्रबल होता है। नारी पुरुष के सम्पर्क में आ चुकी है तब वह नारी का रूप ही तो धारण करेगी। मेरे नारीत्व ने एक पुरुष का साक्षात्कार किया है, जो मेरे जीवन में अब तक हो नहीं पाया था। इस सार्थक पर्व में वह पूर्ण विकसित हो और उस पुरुष के चरणो मे वह स्वय का उत्सर्ग कर अर्घ्य-दान दे—तो बताओ मुञ्जकवि तुम्हारी वाणी उसे साकारता देकर अमर नही कर देगी।

मुञ्जदेव—मूर्तिदान रूप-सौंदर्य की कल्पना हृदय-मन्दिर में प्रतिष्ठित कर एकान्त साधना की ओर अग्रसर हुई हो, मृणालवती। तुम उसे प्राप्त कर अपनत्व विस्मरण कर अह का परित्याग कर चुकी हो। समाधि पा ली है तुमने। यहाँ सयम की कसौटी शिथिल हो रही है। विवेक शून्य में परिणत हो चला है। अग्नि के प्रवाह में भस्मीभूत हो जाना चाहा है तुमने, मृणालवती विश्व में ज्योत्सना है, और ज्योत्सना जब मेरे जीवन में आई तभी महोत्सव हुआ। अब वह ज्योत्सना मेरे जीवन से पृथक् की जा रही है, उसे मै कैसे सहन कर सकूँगा।

मृणालवती—मुञ्जदेव अनर्थ न होगा। कवि-हृदय, तुम्हारा सत्य सिद्ध हुआ है। मृणालवती को अभी बहुत कुछ सीखना शेष है। प्रतिपल प्रस्फुटित होने वाली रसिकता, काव्य की बहुरगी तरगो में रम जाऊँगी। तब होगा मेरा नवीन रसमय जीवन, और पाऊँगी जीवन का दूसरा सत्य।

मुञ्जदेव—मृणालवती स्वस्थता धारण करो।

मृणालवती—मेरे देव, विस्मृत कर दो मेरा प्राचीन रूप। तुम्हारी मृणाल ने नव-रूप सँजोया है। दो वल्लरियाँ एक ही वृक्ष का आश्रय लेकर आगे बढना चाहती है।

मुञ्जदेव—यथेष्ट। तब तुम भी चलोगी मेरे साथ अवन्तिका! मृणाल तुममें कला का आविर्भाव हुआ है। अब तुम सौंदर्य और कला की महारानी हो, प्रकृति-प्रदत्त ज्ञान से तुम अवन्तिका की महान् परिषद् में महामन्त्री का आसन भी ग्रहण कर सकोगी। तुम्हारे मन्त्र से हम तैलगण के भाग्य का पुनः विधान रचेंगे। युद्ध-क्षेत्र में तुम मेरे साथ रहोगी। धरती के छोर तक तुम्हारा सहयोग मुञ्ज स्वीकार करेगा। एक-एक के हित की कामना करेगा, एक-एक के सुख की साधना। (मृणालवती के नेत्रो में नेत्र डालते हुए) मृणाल तुम्हारे नेत्र छलछला उठे है।

मृणालवती—केवल तुम्हारी मनोदशा मुझमें अवगत हो रही है।

मुञ्जदेव—कितनी सुन्दर भावना है मृणाल! भावना जीवन को कटकाकीर्ण पथ में ले जाती है। भावनामय शृंखला

✓ सुदृढ और अपरिमित है। भावुकता भावुक जीवन को संघर्षमय बना देती है।/

मृणालवती—तो कब प्रयाण करना होगा ?

मुञ्जदेव—आज नहीं, तो कल।

मृणालवती—कल आयेगा मेरे जीवन में ?

मुञ्जदेव—यह नैराश्य क्यो ! सैनिक और जिज्ञासु दोनो कल के लिये आशान्वित रहते आये है।

मृणालवती—मै भी अनुकरण करूँगी।

[मृणालवती के नेत्र अर्द्ध-उन्मीलित हो जाते है]

[पट परिवर्तन]

तीसरा दृश्य

काल—वही पूर्ववत् ।

स्थान—वही पूर्वाङ्क दृश्य तीसरे के अनुसार भिल्लमराज के प्रासाद का एक कक्ष ।

(कांचनमाला पर्यङ्कासन पर बैठी किसी लेख में निमग्न है । समय मध्याह्न) ·

[लक्ष्मीदेवी का प्रवेश]

कांचनमाला—माताजी, देखा तुमने ? मेरी नवीन कृति,

[पाठ करती है]

प्रस्फुटित हो उठा स्नेह-ज्ञान,
मृदुमय ! अमर स्नेह वर्तमान ।
महाशून्य मे खोज रही हूँ,
प्रस्फूर्ति-प्रेरक नव-विधान ॥

उर मे होता पल्लवित स्नेह,
अमर सत्य, अमर वल्लरी-सा ।
आच्छादित सुमेघ माला-सा,
युग-पुष्प के नव-निर्माण-सा ॥

हो उठा झंकृत नव प्रश्वसन,
मम मानव-उर सतत सिन्धु में।
होकर प्रज्ज्वलित स्नेह-दीप,
स्नेह सुसरिता-सलिल बिन्दु में ॥

[श्रवण करके]

लक्ष्मीदेवी—तू तो बडी निपुण हो गई। कहाँ से पाया तूने यह प्रसाद ?

काचनमाला—कवि ने दी है सजीवता और सरसता, पुष्प-प्रकृति ने दी है कल्पना।

लक्ष्मीदेवी—तभी तूने अंकित कर लिया है अपने चित्त में। कवि ने सब कुछ प्रकट कर दिया है मुझ पर।

काचनमाला—मातश्री !

लक्ष्मीदेवी—(उठकर) हम पुत्री की रुचि में बाधक नही होगें। महासामन्त से स्वीकृति ले लूँगी।

काचनमाला—(गद्‌गद होती हुई धीमे स्वर में) माताजी।

[कवि पद्मगुप्त का त्वरा से प्रवेश]

कवि पद्मगुप्त—महासामन्त कहाँ है ? आवश्यक मत्र है।

लक्ष्मीदेवी—तैलगणराज से मिलने गए है।

कवि पद्मगुप्त—यथेष्ट ! अवसर मिल गया।

[कवि कहने में सकोच प्रदर्शित करता है]

लक्ष्मीदेवी—पुत्री !

[काचनमाला उठकर जाती है]

कवि पद्मगुप्त—भवितव्यता प्रबल हुई प्रतीत होती है । (इधर-उधर देखकर) सम्भव है तैलगण पर मालवेन्द्र का शासन प्रतिष्ठित हो जाय !

लक्ष्मीदेवी—(साश्चर्य) कवि तो सदैव कल्पना-लोक में विचरण करते आये हैं !

कवि पद्मगुप्त—नही देवी जी, यह सत्य है । मालवी-सामन्त कल्याणी में प्रविष्ट हो चुके है, सह्याद्रि से चलकर रातो-रात आ गए हैं ।

लक्ष्मीदेवी—(प्रसन्न मुद्रा में) सच, कवि पद्मगुप्त ! व्यवस्था उचित हो गई ?

कवि पद्मगुप्त—हां, सब ठीक है। विलास-भवन में मालवेन्द्र से मिलकर आया हूं। सबसे बडी बात तो यह हुई है कि स्वयं मृणालवती अवन्तिका जाने को लालायित हो उठी है ।

लक्ष्मीदेवी—कवि, अनर्गल प्रलाप कर रहे हो ?

कवि पद्मगुप्त—अनर्गल प्रलाप नही है यह । मृणालवती को अनुरक्ति हो गई है, मालवेन्द्र से । तैलगण की भाग्य-विधात्री ने साम्राज्ञी बनने का स्वप्न देखा है । तैलगण और मालव महान् एक सूत्र में आबद्ध होना चाहते हैं । आज की रात्रि (भावावेश में) आज की काल-रात्रि में एक नाटक खेला जायगा । मृणालवती सूत्रधार होगी और मुञ्जदेव होंगे उसके महान् अभिनेता । मृणालवती मुञ्जदेव को

तैलपराज के शयन-कक्ष में ले जायँगी। मालवी-सामन्त स्थून-सैनिको के वश में वहां उपस्थित होगे। जैसे ही मुञ्जदेव तैलपराज के शयन-कक्ष में प्रविष्ट हो चुकेंगे मृणालवती को वहां से हटा लेंगे। बाहर स्थित सैनिको से हमारे मालवी जूझ पड़ेंगे। (गम्भीरतापूर्वक) मुञ्जदेव तैलपराज को द्वन्द्व-युद्ध के लिए ललकारेंगे और उस तुमुल-द्वन्द्व में तैलपराज की पूर्णाहुति होगी। सत्याश्रय और उनके अनुज दशवर्मा के शयन-कक्ष पर हम लोग छिपकर प्रतीक्षा करेंगे। तैलपराज के जीवन-दीप के बुझते ही हम उन्हे अपने नियन्त्रण में ले लेगे। सह्याद्रि-स्थित समर-वाहिनियां, प्रभात होते-होते तैलगण में प्रवेश कर, कल्याणी पर अपनी विजय-पताका फहरा देंगी।

लक्ष्मीदेवी—कवि तुम्हारी योजना भयानक है। और यदि विधि के अक विपरीत हुए तो महासामन्त पर सकट आ जायगा। उचित तो यही रहता उन्हे भी इस मन्त्र से अवगत करा देते।

कवि पद्मगुप्त—नही देवी, सम्भव है महासामन्त हमारी योजना से असह-मति प्रकट कर दें। हमें तो अपनी शक्ति पर ही आश्रित रहना है। महासामन्त के सैनिक भी हमे केवल अवसर-लाभ देंगे, लड़ेंगे तो मालवी—केवल मालवी समर-वाहिनियां। पकड़े जाने वाले अथवा कीर्ति-शेष होने वाले मालवी ही होगे।

लक्ष्मीदेवी—योजना भीषण भविष्य पर आशंकित है, कवि ! यहाँ गुप्तचरो का विस्तृत जाल है, कार्य सावधानी से हो ।

कवि पद्मगुप्त—महाकालेश्वर हमारी रक्षा करेंगे । देवी स्व-कार्य में आसन्न रहे । पूर्व कथन का लाभ कांचनमाला को भी न दें ।

लक्ष्मीदेवी—यथेष्ट, दण्डपाणि तुम्हे सफल करें ।

[मृणालवती का प्रवेश]

लक्ष्मीदेवी—आओ बहिन, (उठकर अभिवादन करती हुई) आओ, बैठो ।

[मृणालवती बैठती हुई]

मृणालवती—कांचन कहाँ गई ? कई दिवस हो गए बिना देखे ।

लक्ष्मीदेवी—अभी तो यही थी । बहिन कुछ विक्षिप्त-सी प्रतीत हो रही है ।

मृणालवती—(कवि पद्मगुप्त की ओर देखकर) कवि कैसे हो ?

कवि पद्मगुप्त—देवी की कृपा से उपकृत हुआ हूँ ।

लक्ष्मीदेवी—पक्षी स्वाधीनता के लिए पंख फड़फड़ाता रहता है । कवि-हृदय छटपटा रहा है । बहिन कह दें, तैलंगणराज से, संभव है छुटकारा मिल जाय ।

मृणालवती—कह दूंगी, अवसर मिलने पर ।

कवि पद्मगुप्त—उपकृत किया है देवी ने ।

[कवि पद्मगुप्त का प्रस्थान]

लक्ष्मीदेवी—पूजा-पाठ से निवृत्त हो आई ।

मृणालवती—हाँ, हो आई। (अनिच्छा-सी प्रदर्शित करती हुई) चित्त मे कुछ व्यग्रता-सी रहने लगी है। एकान्त साधना में निरोध नही मिलता। अवयव शिथिलता अनुभव करने लगे है।

लक्ष्मीदेवी—(सस्मित) बहिन, एक महान् साधना जो पूरी कर रही है।

मृणालवती—(स्तम्भित होकर) लक्ष्मीदेवी! कौन-सी साधना, कैसी साधना?

लक्ष्मीदेवी—चिरपोषित अभिलाषा पूर्ण हुई है, महाप्रतापी मुञ्जदेव तैलगण की प्राचीरो में आबद्ध हैं न।

मृणालवती—(स्वस्थ होती हुई) सो तो हुआ।

लक्ष्मीदेवी—अध्ययन कैसा चला रहा है, बहिन का? मुञ्जदेव का ज्ञान कैसा है?

मृणालवती—लक्ष्मीदेवी, मुञ्जदेव का ज्ञान! क्या कहूँ उसे। वह मुझे एक नए मोड़ पर ला रहा है।

[महासामन्त भिल्लमराज का आते हुई दिखाई देना]

मृणालवती—फिर कभी चर्चा करूँगी, महासामन्त आ रहे है।

[महासामन्त का प्रवेश, मृणालवती जाने को उद्यत होती हैं]

भिल्लमराज—(अभिवादनपूर्वक) बहिन मृणालवती, रुकिये न। क्यो, कैसे चल दी?

मृणालवती—जाना है, महासामन्त! तैलपराज प्रतीक्षा में होगे।

भिल्लमराज—(सस्मित) और अध्ययन का समय भी तो हो रहा है ?

[मृणालवती तथा लक्ष्मीदेवी एक-दूसरे की ओर देखती हैं। मृणालवती की दृष्टि नीचे हो जाती है और वह प्रस्थान करती है।]

मृणालवती—आना लक्ष्मीदेवी !

लक्ष्मीदेवी—अवश्य।

[लक्ष्मीदेवी अभिवादन करके मृणालवती को विदा करती है।]

[पट परिवर्तन]

चौथा दृश्य

काल—वही पूववत्।

स्थान—तैलगणाधीश तैलपराज के शयन-कक्ष का बाह्य-खण्ड।

(प्रकाश अत्यन्त साधारण है। वायु का प्रबल वेग भयकर तूफान का प्रतीक है। आकाश में मेघ-मण्डल जल-वृष्टि की प्रतीक्षा कर रहे हैं। कुछ व्यक्तियो के आने की पग-ध्वनि सुनाई पड रही है, कभी-कभा आकाश-मण्डल में विद्युत्धारा प्रवाहित हो उठती है। उसका गम्भीर घोप तथा सहसा उत्पन्न होने वाला प्रकाश शयन-कक्ष में प्रवेश कर जाता है। प्रकाश की किरणो में पर्यङ्क-शैया पर तैलपराज निद्रा की गोद में दिखाई देते हैं। सहसा उनकी निद्रा भग होती है। वे उठकर वातायन में से मेघाच्छादित आकाश की ओर देखने है। समय रात्रि का तृतीय चरण।)

[बाह्य खण्ड में]

प्रहरी—कौन ? सावधान !

मृणालवती—प्रहरी ! (कठोरता से) मैं हूँ मृणालवती।

प्रहरी—आज्ञा देवी जी ?

मृणालवती—तैलपराज सो चुके या जागृत है ! द्वार खोल दो प्रहरी।

[प्रहरी द्वार अनावृत करता है]

मृणालवती—(साथी आगन्तुक से) आओ मेरे साथ।

[आगन्तुक मृणालवती के पीछे-पीछे चलते है। तैलपराज पग-ध्वनि से स्तम्भित होकर द्वार की ओर देखते है।]

तैलपराज—कौन ?

मृणालवती—मैं हूँ भाई।

तैलपराज—(साश्चर्य) इस समय यहाँ ! साथ मे कौन है ?

मृणालवती—मुञ्जदेव।

तैलपराज—(साश्चर्य) कारण ?

मृणालवती—कुछ आवश्यक निवेदन है।

[मृणालवती प्रकाश-स्तम्भ पर रखे दीप की ओर अग्रसर होकर प्रकाश को तीव्र करना चाहती है। वायु का प्रबल झोका आकर दीप को बुझा देता है। वातायन से विद्युत् धारा का प्रकाश कक्ष में आता है। भित्ति पर स्थित कृपाणें मुञ्जदेव की दृष्टि में आ जाती है, वे त्वरा से दो कृपाणे अपने अधीन कर लेते है। मृणालवती और तैलपराज दोनो स्तम्भित हो मुञ्जदेव को देखते है।]

मृणालवती—(साश्चर्य कठोरतापूर्वक) मुञ्जदेव क्या करना चाहते हो ? यह छलना है। तुम छलना का आश्रय लोगे ?

तैलपराज—(सरोष) मुञ्जदेव ! सावधान। यह अवन्तिका नहीं है, तैलगण है।

मुञ्जदेव—तैलगणराज जानता हूँ, किन्तु यह बता देना भी आवश्यक है कि अवन्तिका और तैलगण आज एकसूत्र में आबद्ध होने जा रहे हैं। इस मिलन में जो कोई बाधक होगा, वह काल का ग्रास होगा।

[बाह्य खण्ड में कोलाहल-सा सुनाई देता है, आकाश क्रुद्ध होकर मूसलाधार वृष्टि करने लगता है, झंझा प्रबल हो उठता है।]

तैलपराज—(सभीत-सा) मुञ्जदेव इसका प्रतिफल कठोर है। जानते हो ?

मुञ्जदेव—(क्रोधावेश में) मुञ्ज तुम्हें द्वन्द्व के लिये ललकारता है।

[मृणालवती त्वरा से तैलपराज और मुञ्जदेव के बीच खड़ी हो जाती है। उसका वक्षस्थल मुञ्जदेव की ओर है।]

मृणालवती—मुञ्जदेव, लो प्रतिकार। देखूँ तो तुम्हारी भावना, तुम्हारा सत्य।

मुञ्जदेव—तुम हट जाओ मृणाल—भारत के विशाल साम्राज्य

मृणालवती—नहीं, नहीं। इस द्वद्व में मृणाल की आहुति होगी। रुक जाओ, अपना निर्णय बदलो मुञ्जदेव।

[मृणालवती को एक ओर हटाकर]

तैलपराज—हमें द्वन्द्व स्वीकार है।

मुञ्जदेव—तब लो कृपाण ।

[तैलपराज कृपाण लेते है। आकाश में गम्भीर गर्जन होता है, कक्ष मे प्रकाश भर जाता है ।]

मृणालवती—रुक जाओ। रुको। वसुन्धरा के दो महान् योद्धाओ रुक जाओ। यह क्या हो रहा है ! एक भयानक भविष्य का निर्माण रोक दो। मैंने उल्का-पात देखा है—एक भीषण उल्का-पात ! वह महान् मृत्यु का द्योतक है। दोनो मे से एक की मृत्यु निश्चित है इस कर्म से। रोक दो इस कर्म को।

तैलपराज—(सक्रोध) वीरो की निकली असि-धाराएँ रुकती नही।

मुञ्जदेव—महाकालेश्वर के चरणो मे रखूँगा, तुम्हारा शीश। तैलप आघात हो।

तैलपराज—पहले अवन्तिका आघात करे।

मुञ्जदेव—तैलगण आक्रान्ता रहा है, वही अपनी परम्परा स्थिर रखे।

तैलपराज—सावधान मुञ्ज !

मुञ्जदेव—सावधान हूँ। आघात आरम्भ हो।

[तैलपराज आघात करते है, आघात रिक्त जाता है]

मुञ्जदेव—द्वितीय आघात हो तैलपराज !

[पुनः आघात करके]

तैलपराज—लो यह दूसरा।

मुञ्जदेव—यह भी रिक्त गया। तृतीय आघात की भी हम प्रतीक्षा करेंगे।

[आकाश में गर्जन होता है, विद्युत् प्रकाश पुन कक्ष में प्रवेश करता है]

तैलपराज—यह लो मुञ्ज !

मुञ्जदेव—(सहास्य) तैलपराज, यह भी रिक्त रहा। विधि के अक प्रबल हो उठे है। अब हमारे आघात होगे, सावधान !

मृणालवती—मुञ्जदेव, फेंक दो कृपाण। तुम्हें महाकालेश्वर की सौगन्ध है।

मुञ्जदेव—यह क्या मृणालवती ! अवन्तिका की साम्राज्ञी बनना है तुम्हे, कायरता प्रसूत हुई है तुममें। (कृपाण फेंककर) हम मृणाल के आदेश का पालन करेंगे। दूसरा आदेश दो, हम उसका भी पालन करेंगे। हम तैलपराज को बन्दी बनाकर, तुम्हारे साथ ही, अवन्तिका ले जायेंगे।

तैलपराज—अब तो तुम्हारी अस्थियाँ जायेंगी वहाँ। नीच, नारकीय कीटाणु, तुम्हे लाज नही आती। साध्वी, तापसी बहिन मृणाल के प्रति ऐसी दुर्भावना। जिह्वा काटली जायगी तुम्हारी।

[कुछ सैनिकों का प्रवेश]

एक सैनिक—देव सावधान। एक षड्यन्त्र चल रहा है। इस कुचक्र में मालवी-सामन्त बधक बना लिये गये है।

तैलपराज—और ये रहा इस कुचक्र का सचालक मुञ्ज। लेजाकर इसे

भी डाल दो कारागार में। (सराय) घोर अंधकार में, जहाँ प्रकाश की किरणें भी इसे देखना अपना अपमान समझें।

मुञ्जदेव—तैलपराज, तुमने मुञ्ज की शक्ति और वैभव देखा है—और कुछ देखना शेष है ?

मृणालवती—मुञ्जदेव को क्षमा करदो, तैलपराज। अभी-अभी उन्होंने जीवन-दान दिया है। प्रतिदान गौरवास्पद है। वे क्षम्य हैं।

मुञ्जदेव—कौन क्षम्य है। मुञ्जदेव, क्षम्य ! मृणालवती भूलती हो। क्षम्य हो सकते हैं तो तैलपराज। (गम्भीरतापूर्वक) मुञ्जदेव ने क्षमा-दान किये हैं, जीवन-दान दिये हैं, जीवन के लिये भिक्षा नहीं माँगी।

तैलपराज—तैलपराज ने जीवन-दान देना ही नहीं सीखा।

मुञ्जदेव—तैलपराज तुम कर ही क्या सकते हो ?

तैलपराज—अभिमानी का गर्व चूर्ण कर कठोर दण्ड दे सकता हूँ। यातनापूर्ण जीवन भोगोगे तुम।

मुञ्जदेव—यह भी तुम्हारी सामर्थ्य में नहीं है। मृणाल खेद है तुम्हारा साम्राज्ञी-स्वप्न पूर्ण न हो सका।

तैलपराज—मुञ्ज, मर्यादा के भीतर ही रहिये। तपस्विनी के प्रति तुम्हारी हेय भावना ?

मृणालवती—तैलपराज। इस व्यर्थ के वार्तासंघर्ष में पड़ना उचित नहीं।

मुञ्जदेव—यथेष्ट, मृणालवती। वार्तासंघर्ष व्यर्थ है। तैलपराज इस

मुञ्ज को उचित दण्ड दे। दण्ड अवन्तिकानाथ के ही अनुरूप हो।

तैलपराज—व्यथित न हो मुञ्ज, तुम्हारा शरीर पीस डाला जायगा। उसके चूर्ण मे हम अवन्तिका मे जाकर वसन्तोत्सव मनावेगे।

मुञ्जदेव—कल्पना तो सुन्दर रही। रस का आभास मिलने लगा, तैलगण मे। किन्तु पहले अपनी सत्ता मे प्रसारित अजीर्ण का उपचार करके आना, उस चूर्ण से। तैलपराज उस चूर्ण के अणु-अणु से एक-एक मुञ्ज—एक-एक पृथ्वी-वल्लभ उदय होगा, तब भी क्या उससे निस्तार पा सकोगे ? तैलगण की आधार-शिला मे जीवन भर गया है। जानते हो ?

तैलपराज—तुम्हारा विनाश ही हमे तुष्टि देगा। तभी हमारी आत्मा मोक्ष पा सकेगी।

मुञ्जदेव—भ्रम मे हो तैलपराज, तुम उसके अधिकारी नही बन सके। तुम्हारे भाग्य में मोक्ष कहाँ हे ? मृणालवती हुई है मोक्ष की अधिकारिणी।

तैलपराज—सन्नि-ज्वर प्रबल हो उठा है। शमन होने दो उसका। तब विचार सकोगे मुञ्ज तुम, क्या हो !

मुञ्जदेव—हम क्या है, यह अभी तक भान न हुआ तुम्हे। हमारी भावी कीर्ति अब तुम्हे इसका भान करायेगी।

तैलपराज—हमारा दण्ड-विधान उस कीर्ति को मटिया-मेट कर देगा। अब तुम्हे मृत्यु का आलिगन करना होगा। ले जाओ सैनिको।

मुञ्जदेव—हम उसकी प्रतीक्षा करेंगे तैलपराज।

[सैनिक मुञ्जदेव को घेरकर ले जाते है। खिन्न-वदना मृणालवती उनको देखती है।]

मुञ्जदेव—(जाते-जाते) मृणाल धैर्य रखना। इस जीवन में नही तो अगले जीवन में। प्रतीक्षा में आनन्द है, रस है। स्मरण रखना।

तैलपराज—(सक्रोध) ले जाओ इसे। दुष्ट, पामर!

[पट परिवर्तन]

पाँचवाँ दृश्य

काल—वही पूर्ववत् ।

स्थान—तैलगण मे भिल्लमराज के प्रासाद का अन्तराल ।

(अन्तराल साधारणतया सुसज्जित है । यत्र-तत्र बैठने के लिये कुछ मच रखे है । एक काष्ठ-निर्मित पर्यङ्कासन रखा है । उसका निर्माण कलामय है । उस पर श्वेत वस्त्र बिछा है । लक्ष्मीदेवी तथा सुलेखा खडी-खडी किसी के आगमन की प्रतीक्षा कर रही है । समय रात्रि का द्वितीय चरण ।)

लक्ष्मीदेवी—सुलेखा, जा वह चित्र तो ले आ । सँभालकर रख दे । (सचेत होकर) सम्भव है, चित्त के भार को उससे ही हल्का कर सकूँ । काचनमाला की स्मृति अब तो उसी से विस्मृत कर सकूँगी । सुलेखा, देव भी तो नही आये । कुछ अमगल न हो जाय । इसी चिन्ता ने पीडित कर रखा है ।

[उत्सुकतापूर्वक मार्ग की ओर देखकर]

लक्ष्मीदेवी—सुलेखा, ओ सुलेखा ।

सुलेखा—(प्रवेश करके) आज्ञा माताजी ।

लक्ष्मीदेवी—(विक्षिप्त होती

हुई) तू जा सकती है मृणालवती के प्रासाद तक ?

सुलेखा—देवी क्षमा करें, रात्रि बहुत बढ रही है। भय मालूम होगा।

लक्ष्मीदेवी—मेरे साथ चल सकेगी ?

सुलेखा—चल सकूंगी महारानी जी। किन्तु इतनी व्याकुलता का कारण ? धैर्य से काम ले महारानी जी।

लक्ष्मीदेवी—महासामन्त पर भावी सकट न आ जाय कही ?

[अन्धकार में आहट सुनाई पडता है।]

लक्ष्मीदेवी—कौन होगा ?

भिल्लमराज—मै हूँ देवी। क्यो ?

लक्ष्मीदेवी—यो ही, चिन्ता-ग्रस्त थी।

भिल्लमराज—देवी, बडा अमगल हो गया।

लक्ष्मीदेवी—(व्यथित होकर) तब योजना असफल हो गई क्या ?

भिल्लमराज—(स्तम्भित होकर) योजना ! तुम्हे कैसे मालूम हुआ ?

लक्ष्मीदेवी—अवन्तिका के युवराज आये थे, कुमार भोजराज। जानती हूँ योजना रची गई थी। तब वह सफल नही हुई ? हा दैव !

भिल्लमराज—देवी, स्वस्थता धारण करो।

लक्ष्मीदेवी—(कातरतापूर्वक) तब क्या हुआ, अवन्तिकानाथ निकल न पाये ?

भिल्लमराज—हाँ, आंधी और वर्षा उनके मार्ग में आये। मार्ग अवरुद्ध हो गया। काचन कहाँ है ?

लक्ष्मीदेवी—युवराज के साथ । अवन्तिका ।

भिल्लमराज—अवन्तिका के युवराज के साथ । (दीर्घ निश्वास के साथ) भगवान् उसका मार्ग मगलमय करें । किन्तु देवी यह घटना भयानक हुई । सारे मालवी वन्धक वना लिये गए है ।

लक्ष्मीदेवी—देव, किन्तु उनके साथ तो कोई नही था । पभु रक्षित करेगे उन्हे ।

भिल्लमराज—देवी, जो घटना-चक्र, जो अन्याय—इस तैलगण में हो रहा है, उससे हमारी आत्मा कराह उठी है । हमें अन्याय का निरन्तर समर्थन करना होता है । हमने अपनी आत्मा से, अपनी सहधर्मिणी से और अपनी देह से विद्रोह किया है । तैलप की कीर्ति को प्रस्तारित करने के लिए हमें न्याय का दमन करना पडा है । (कातरतापूर्वक) मुञ्जदेव को, अवन्तिका के गौरव को, इस स्थिति में हमने ही ला पटका । हमारी मानवता हमसे विद्रोह करना चाहती है । (गम्भीरता-पूर्वक) आज भिल्लम का मानव जागृत हुआ है । हम विद्रोह करेंगे । तैलगण में अव न रहेगे । हम यहाँ से कूच करेंगे । यहाँ का अन्न अभक्ष्य है, यहाँ का जल अपेय होगा अव हमें । देवी शीघ्र तत्पर हो ।

लक्ष्मीदेवी—सुलेखा, चल प्रस्तुत होजा, हम भी चलेंगे । दासत्व-शृंखला छिन्न-भिन्न हो चली है । अपने देश चलना है । मेरा रोम-रोम पुलकित हो रहा है, स्यूनराज के निर्णय से ।

भिल्लमराज—हमारा स्वदेश—हमारे प्रजा-जन प्रतीक्षा कर रहे हैं। हमारे स्वागतार्थ वे आतुर हो उठे हैं। जब हमें देखेंगे वे सुखी हो उठेंगे। स्यून का अतुल वैभव, अतुल सुख अनिर्वचनीय ऐश्वर्य पुनः जागृत होगा। चलो, विलम्ब न करो देवी।

लक्ष्मीदेवी—तब मुञ्जदेव का भविष्य क्या रहा, देव ? मृणालवती का क्या हुआ ?

भिल्लमराज—मुञ्जदेव की रक्षा हमें करनी होगी। मृणालवती पर अभी कोई आपत्ति नहीं आई है।

भिल्लमराज—हमें संकट का सामना करने के लिए प्रस्तुत रहना चाहिये।

लक्ष्मीदेवी—मैंने साधन सकलित कर लिए हैं। स्यूनदेश के पाँच सौ सैनिक हमारे सरक्षण के लिए प्रस्तुत हैं। स्यून के सामन्त आ गए हैं, कल्याणी में। यदि मृणालवती अथवा किसी ने हमारा मार्ग अवरुद्ध किया तो जूझ पड़ेंगे। स्यून की सीमा पर मालव-वाहिनियाँ हैं ही। युवराज ने पहुँचकर स्थिति का भान करा ही दिया होगा।

भिल्लमराज—विद्रोह करेंगे हम ! अराजकता फैल जायगी सर्वत्र।

लक्ष्मीदेवी—तैलगण की सत्ता पथ-भ्रष्ट हो चुकी है। तब यह विद्रोह कहाँ है ? और रही अराजकता, तो इसके सूत्रधार स्वयं तैलगणराज हैं।

भिल्लमराज—मालव-समर-वाहिनियो ने सह्याद्रि से प्रयाण कर दिया है। उन्हें रोकना होगा। प्रकृति बाधक रही, अन्यथा वे यहाँ पहुँच चुकी होती।

तैलपराज—यथेष्ट ! तुम जाकर उन्हे रोक सकोगे ?

भिल्लमराज—निस्सन्देह, तैलगणराज ! भिल्लम अपना कर्तव्य निभायेगा। एक निवेदन है। मुञ्जदेव को अवन्तिका लौट जाने दें तो ठीक रहेगा। विजय-लाभ तो तैलगण के पक्ष में रहा ही है। वात्याचक्र में पर्याप्त परिवर्तन हो चुका है, विवेक से काम लें, देव।

तैलपराज—भिल्लमराज ! यथेष्ट, विचार करेंगे।

भिल्लमराज—(गम्भीरतापूर्वक) तैलगणराज, भावी संघर्ष का अन्त यही होगा।

मृणालवती—मन्त्र तो उचित प्रतीत होता है। महासामन्त हम भी सहमति रखते हैं, तुम्हारे मन्त्र से।

भिल्लमराज—उपकृत हूं, देवी की सहानुभूति से।

[तैलपराज तथा मृणालवती का प्रस्थान]

भिल्लमराज—रणराय, अब तो कैसे भी हो मुञ्जदेव को छुटकारा दिलाना होगा।

रणराय—देव, आज्ञा दें। तैलपराज को कीर्ति-शेष करना सरल होगा।

भिल्लमराज—सामन्त, ऐसी हेय कल्पना। हम तुम्हारे साहस से परिचित हैं। तुम्हारा एक ही आघात तैलपराज को समाप्त कर सकता है। किन्तु यह विश्वास-घात होगा। तैलपराज इस समय दयनीय स्थिति में है। स्यून का

सैनिक तैलगण में रहते विद्रोही न होगा । उनके घर में ही चिनगारियाँ सुलग उठी हैं । वह स्वयं जल रहे हैं, उनमें । जिस मृणाल पर उन्हें विश्वास था, वही उनकी शत्रु बन गई है। तैलगण में कलंक भर चुका है । मुञ्जदेव का स्वप्न सत्य सिद्ध हुआ । वे तो यहाँ भी गौरवशाली हुए । कलङ्कित हुआ है तो तैलगण का राज-प्रासाद। उसकी कीर्ति विगलित हो रही है । भविष्य का कर्म उसे ज्ञात है, वह इस कल्पना को साकार रूप देगा। पहले हमें स्यूनदेश पहुँचना होगा, स्यूनदेश ।

[पट परिवर्तन]

छठा दृश्य

काल—वही पूर्ववत् ।

स्थान—इसी अङ्क के दृश्य दो के अनुसार मृणालवती का विश्राम-कक्ष ।

(तैलपराज तथा मृणालवती वार्तालाप करते हुए)

तैलपराज—वहिन मृणालवती ! तैलगण में कलक भर गया है । मुञ्ज यहाँ पर आकर भी गौरव-पद पर प्रतिष्ठित हो रहा है । तुम्हारे ससर्ग ने तैलगण की धवल-कीर्ति पर कालिमा पोत दी है ?

मृणालवती—तैलपराज, मुञ्जदेव का भूत उज्ज्वल रहा है, भविष्य अंधकार में विलीन होगा ? कौन जाने उनके प्रति तुम्हारी धारणा क्या है ?

तैलपराज—उसने तैलगण की तपस्विनी को अपमानित किया है । हमारी वहिन को कलकी जीवन का पाठ पढ़ाया है । उसने तैलगण की भाग्य-विधात्री के त्याग को दूषण दिया है । उसको मृत्यु से खेलना होगा अब ।

मृणालवती—मुञ्जदेव ने तुम्हें कीर्ति दी है, गौरव प्रदान किया है, तैलपराज !

तैलपराज—(सव्यंग) गौरव! वह तो तैलंगण की वीथिकाओं मे प्रसारित हो चुका है। मृणालवती और मुञ्ज की गाथाएँ तैलगण की प्राचीरो तक ही सीमित न रहेगी। आने वाला कल दूर-दूर तक पहुँचा देगा उन्हे।

[तैलपराज वातायन के समीप खड़े होकर]

तैलपराज—मृणालवती तुमने हमें वह प्रताडना दी है जिसका साम्य दूसरा नहीं हो सकता।

[मृणालवती अपना मुख अपने इष्टदेव—महादेव के सम्मुख करके खडी है]

मृणालवती—तैलपराज, मैं अब भी तैलगण की राजमाता हूँ। ध्यान रहे। मर्यादा के बाहर कुछ हुआ तो उचित न रहेगा।

तैलपराज—(सगर्व) अब भी तुममें साहस देख रहा हूँ मृणालवती। किन्तु इस भभक में अब तेज नही रहा।

मृणालवती—तैलंगण का शासन देखना है।

तैलपराज—उससे द्वन्द्व नही ले सकती मृणालवती।

मृणालवती—देख रही हूँ तुम्हारी द्वन्द्व-शक्ति। मेरा मोह ही आज मेरा शत्रु बन गया है। वही मेरे प्रति विद्रोह कर रहा है?

तैलपराज—अब तो मोह मुञ्ज को समर्पित कर चुकी न?

मृणालवती—(सक्रोध) तैलप! उनका जीवन निर्विकार, स्वच्छ रहा है वह आज भी है और कल भी रहेगा।

त—अब कल की प्रतीक्षा कौन करेगा, जो आज न कर सका उसे प्रायश्चित्त ही करना पड़ा है। उसे बन्दी बनाते ही मृत्यु की भेंट कर दिया होता तो भावी कल की प्रतीक्षा में यह दुर्दिन न देखना होता। उस कल, विगत कल के लिये आज प्रायश्चित्त करना पड रहा है। उस दिवस के सुयोग को भावी कल के लिये टालने पर कलंक बन गया है।

मृणालवती—तैलपराज, स्मरण रखना, मृणालवती ने सत्य पाया है और तुम अभी मिथ्या के आडम्बर में फँसे हो। मैंने ही अपना जीवन त्यागमय, संयम-शील बनाया था और जब उसे भान हुआ, जीवन का सत्य क्या है तो उसने उससे विद्रोह किया है। ऐसी चिनगारियाँ बहुत-से प्रासादों में सुलगा करती हैं, जीवन भर उन्हें सिसकना पड़ता है और तुम पुरुष, नारी से—एक नहीं अनेक नारियों से खेला करते हो।

तैलपराज—यह तो विधाता का खेल है।

मृणालवती—नारी को प्रताड़ना का अधिकारी बनाया पुरुष ने और दोष मढ़ता है वह विधाता पर। मृणालवती ने संयम अवश्य छोड़ा, किन्तु त्याग किया है, आज का युग उसे कलंकित कर सकता है, किन्तु कल का युग उसे घृणित

न समझेगा। मृणाल ने वही चाहा जो उसे प्रिय था, जिसकी उसे आवश्यकता थी। मेरा जीवन आदर्श रहा है और आगे आने वाले युगो मे भी आदर्श माना जायगा।

तैलपराज—मृणालवती! तुम्हारे संयमी जीवन के लिये यह कालिमा है।

मृणालवती—सत्यान्वेशी को किसी न किसी वस्तु का त्याग करना ही होता है।

तैलपराज—इस दूषण का सूचक अब तुम्हे मिलने का नही। परिषद् मुञ्जदेव को मृत्यु-दण्ड देगी—केवल मृत्यु-दण्ड। यह भयानक अपराध! तैलगण का दूषण, मृत्यु से अठखेलियां करेगा।

[मृणालवती भावावेश में शिव की मूर्ति के सम्मुख बैठ जाती है। उसके नेत्र मे अश्रु-विमोचन होने लगते है। वह अपने को शिव के समर्पण करने का उपक्रम कर रही है।]

मृणालवती—इस कल्पना में नवीनता नही रही (शिव मूर्ति को सम्बोधित करके) भोले शंकर! मुझे शक्ति दो। भगवन्!

[द्रुतगति से सत्याश्रय का प्रवेश]

सत्याश्रय—जय हो पितृश्री। मुञ्ज का घात हुआ।

तैलपराज—(स्तम्भित हो कर) ऐं ! कैसे ?

[मृणालवती सुनकर स्तम्भित रह जाती है। वह शिव—महादेव-मूर्ति के चरणो में लुण्ठित-सी गिर पड़ती है। उसकी वाणी से प्रसारित होता है श्री नम शिवाय।]

सत्याश्रय—कुछ अवशिष्ट मालवी सैनिक वन्दीगृह के उत्तरी-कक्ष मे आक्रान्ता हुए थे। द्वार भग कर मुञ्ज भी उनमे सम्मिलित हो गया था।

तैलपराज—(गम्भीरतापूर्वक) मालवी-सैनिकों ने पुन दुस्साहस का परिचय दिया ! मुञ्ज भी उनमे सम्मिलित हो गया। (उद्विग्नतापूवक) मुञ्ज ! क्या तुम्हारा मार्ग उचित था यह ? फिर क्या हुआ ?

सत्याश्रय—सघर्ष ने भयावह रूप धारण कर लिया। हमारी सैनिक-शक्ति ने मृत्यु की शृखला में पिरो दिया उन्हें।

तैलपराज—(व्यग्रतापूर्वक) मुञ्जदेव का यह अन्तिम क्षण भी कैसा—कैसा गौरव लिये है। (स्वीकारोक्ति में) तुम वीर-शिरोमणि थे मुञ्जदेव। तुम्हे चिर शान्ति प्राप्त हो।

[एक गहन दीर्घ निश्वास प्रश्वसन के पश्चात् स्व-शिर धरती की ओर झुका लेते हैं]

मृणालवती—(धीम स्वर में) अवन्तिकानाथ तुम्हारा गौरव भी सत्य हुआ।

[मृणालवती की वाणी अवन्तिकानाथ ! अवन्तिकानाथ, मालवेन्द्र, ध्वनित करती-करती श्री नम